पहला अध्याय

भगोड़े विद्यार्थी

उन्नीसवीं सदी का तीसरा चरण चल रहा था। संसार से मध्ययुग के अंधकार और अज्ञान का अंत हो चुका था। सामंतशाही का नाश हो चुका था और व्यावसायिक क्रान्ति अपने पैर फैला रही थी। मशीनों का आविष्कार हो रहा था और उनके द्वारा संसार में नई सभ्यता और नई संस्कृति के युग का जन्म हो रहा था। समुद्रों की अपार दूरी को दुस्साहसी नाविकों के समूह ने इस सिरे से उस सिरे तक नाप डाला था। प्रत्येक राष्ट्र अन्य राष्ट्रों से सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा कर रहा था। महत्त्वाकांक्षी राष्ट्र अपनी फालतू उपज खपाने के लिए सभी प्रकार के प्रयत्न कर रहे थे। परन्तु सुदूर पूर्व का द्वीप-राज्य जापान इन दिनों भी संसार के शेष भागों से कटा हुआ-सा था। जहाँ संसार में परिवर्तनों, उलट-फेरों और क्रान्तियों की धूम मची हुई थी, वहाँ जापान अपनी मध्य-कालीन संस्कृति और सभ्यता को ही लेकर चल रहा था। वह अपने पुराने सामाजिक ढाँचे में ही रहने के लिए विवश था। कारण, जापान के राजा की आज्ञा ही ऐसी थी। जापान में न कोई विदेशी आ सकता था और न जापान से कोई विदेशों को जा सकता था। जो इसके विपरीत आचरण करता उसे प्राण-दंड दिया जाता।

शेष दो—ईटो और इनोउये को बड़ी मुसीबतों का सामना करना पड़ा। दुर्लंघ्य बाधायें उनके मार्ग में उपस्थित हुई। फिर भी उन दृढ़प्रतिज्ञ युवकों ने साहस नहीं छोड़ा। आगे चलकर उन्हें आधुनिक जापान के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भाग लेना था, फिर वे बाधाओं को देखकर अपने कर्त्तव्य-पथ से कैसे विमुख हो जाते? उन्हें एक तिजारती जहाज में किसी तरह कुलियों का काम मिल गया। उसी में कुलियों के साथ भोजन करते हुए और कुलियों के वस्त्र पहनते हुए वे विदेशों के लिए रवाना हो गये। एक ओर थीं समुद्र की उत्ताल तरंगें और दूसरी ओर उनके मन की उच्च अभिलाषायें! उनका जहाज केप-कामोरिन के रास्ते चल पड़ा। उन युवकों ने इस कुलीगीरी के काम से भी लाभ उठाने की भरपूर चेष्टा की। उनका प्रारंभ से ही यह विश्वास और विचार था कि उनकी द्वीप-भूमि की उन्नति और विकास के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उनके देशवासी जहाज चलाने की कला अच्छी तरह जानें। अतएव उन्होंने इस अवसर से लाभ उठाकर उक्त कला की शिक्षा प्राप्त करना प्रारंभ कर दिया।

इंग्लैंड में रहकर उन्होंने अध्ययन करना प्रारम्भ तो किया, किन्तु कोर्स की किताबें पढ़ने से अधिक वे पढ़ते थे वहाँ की राजनीतिक स्थितियों का उतार-चढ़ाव, वहाँ की सामाजिक व्यवस्थाओं का बनना बिगड़ना, वहाँ की सांस्कृतिक प्रवृत्तियों की गतिविधि और सबसे अधिक वहाँ की भौतिक उत्थान तथा व्यावसायिक क्रान्ति की गति-प्रगति। वहाँ की विभिन्न व्यवस्थाओं के गंभीर ज्ञान के अतिरिक्त उन्होंने अँग्रेजी भाषा का भी असाधारण ज्ञान अत्यन्त थोड़े समय में ही प्राप्त कर लिया।

किन्तु अन्तर्राष्ट्रीयता अपनी पूरी शक्ति के साथ गतिशील थी। व्यवसाय और धन के जो देश स्वामी बनकर थे वे इस बार

भयंकर बम-वर्षण और जापान का घोर राष्ट्रीय अपमान ! और उन युवकों को—ईटो और ईनोउये को प्राप्त हुई ऐसी भयकर यातना, इतनी निर्दय मार कि वे लगभग मर चुके थे। उनके गोत्रवालों ने उन्हें देश और समाज का विश्वासघाती घोषित कर दिया था।

ऐतिहासिक प्रक्रिया के क्रम में जब नवीन जापान का उद्भव हुआ तब वे ही दोनों युवक सरकार के प्रमुखतम अङ्ग और देश के विशिष्ट एवं सम्मानित राजपुरुष बने। ईटो ने मिनिस्टर-प्रेसिडेंट के उच्चतम पद को केवल सोलह वर्ष बाद ही सुशोभित किया। ईनोउये भी वैदेशिक मन्त्री के पद पर प्रतिष्ठित हुआ।

इतिहास की रेखायें

हम पहले कह आये हैं कि जापान उन्नीसवीं सदी के अंत तक अंधकार में पड़ा हुआ था। वहां भाँति-भाँति की रूढियाँ प्रचलित थीं। इन रूढियों की दिलचस्प जानकारी के लिए उसके विगत इतिहास का कुछ परिचय दे देना आवश्यक है; क्योंकि किसी देश का वर्तमान उसके अतीत से संबद्ध रहता है। जापान का इतिहास अन्य महान् राष्ट्रों के इतिहास की भांति बहुत प्राचीन नहीं है। कहा जाता है कि ६६० ई० पूर्व में जिम्मू-टेनो नामक एक व्यक्ति ने इस साम्राज्य की नींव डाली थी और अपने को वहां का प्रथम सम्राट् घोषित किया था। इससे एक ही शताब्दी पूर्व महान् रोम की स्थापना हुई थी।

जापानियों का यह विश्वास अत्यन्त प्राचीन काल से आज तक एक रूप में चला आया है कि उनके सम्राट् सूर्यदेव के वंशज हैं। यहां तक कि बुद्धिवादिता का दावा करनेवाले जापानी पण्डितों का विश्वास भी ठीक वैसा ही है। जिम्मो के वंशज लगभग १२ शताब्दियों तक शासन करते रहे। उनमें से कुछ तो

उसने न केवल सैनिक-शक्ति बल्कि समूची राज्य-शक्ति पर अधिकार स्थापित कर लिया और आजीवन उस पर आरूढ़ रहा। टोकियो से ३० मील की दूरी पर एक स्थान था कामाकुरा, जहाँ उसने अपना निवासस्थान बनाया। यह नगर शीघ्र ही बढ़कर एक घना नगर और राज्य की वास्तविक राजधानी बन गया। सम्राट् का नगरस्थान कियोतो केवल नाम के लिए शासन का केन्द्र रह गया। प्रथम शोगुन ने इस तरह कामाकुरा से साम्राज्य का शासन करना प्रारम्भ किया। प्रान्तों का शासन उसके सम्बन्धियों, अनुयायियो और वफ़ादार सैनिकों के हाथ में था, जो पहले से ही युद्धो मे उसका साथ देते आये थे और जो केवल शोगुन की ही सत्ता स्वीकार करते थे।

यहीं से जापान के इतिहास मे दोहरी शासन-प्रणाली और सामन्त-प्रथा की नींव पड़ी जो योरीतोमो (११९२ से ११९९) के काल से प्रारम्भ होकर गत दिनों सम्राट्-पद की पुनः प्रतिष्ठा और नये सम्राट् के राज्यारोहण के समय तक कायम रही। 'सम्राट् की राजधानी कियोतो' मे, यद्यपि सम्राट् का, उच्चासन सर्वोपरि कानूनी शासक के रूप में क़ायम रहा, उसके इर्द-गिर्द दरबारियों का जमघट लगा ही रहा, किन्तु सम्राट् से लेकर दरबारियों तक को अपने अस्तित्व के लिए शोगुनों पर ही निर्भर रहना पड़ने लगा। शोगुन लोगो ने इतनी कंजूसी से सम्राट् और सम्राट् के दरबारियो की व्यय-व्यवस्था करना शुरू की कि वे सब दरिद्रता के दलदल में डूबने-उतराने लगे। शान-शौकत, विलास-वैभव सब कुछ समाप्त हो गया। दूसरी तरफ़ कामाकुरा में, येदो में और फिर कियोतो में, शोगुनों के दरबार इस शानदार शान से चलने रहे कि उन्हें देखकर बड़े-बड़ों की आँखें चौंधिया जाती थीं। राष्ट्रीय प्रबन्धकारिणी शोगुनों और उनके मन्त्रियों

में जापान ने अपने बन्दरगाहों में योरोप के जहाज़ों का जी खोलकर स्वागत करना शुरू कर दिया। पोर्चुगीज़, स्पेनिश, डच और अँगरेज़ सभी तरह के सुदूर पूर्वीय व्यापारी जापान में स्वागत-सम्मान पाने लगे। पोर्चुगीज़ और स्पेनिश व्यापारियों के पहले दल के पहुँचने के पूर्व ही वहाँ रोमन कैथोलिक और जेसुइट चर्चों के धर्म-प्रचारक पहुँच चुके थे और उन्होंने एक शताब्दी के भीतर ही लगभग १० लाख जापानियों को ईसाई बना डाला था। धर्म-प्रचार का यह उत्साह शीघ्र जापानियों के प्रबल असन्तोष का कारण बन गया। धर्म-प्रचार के इस उत्साह में साम्राज्य की स्वाधीनता पर आघात पहुँचने की सम्भावना देखकर, शासन का रुख़ न केवल धर्म-प्रचारकों के प्रति बल्कि सभी योरोपियनों के प्रति पूर्णतः परिवर्तित होकर कठोर हो गया। शीघ्र ही अधिकारियों ने ईसाई प्रचारकों को दण्ड भी देना प्रारम्भ कर दिया। कहा जाता है कि इस कार्य में अत्यधिक अमानुषिकता और बर्बरता का परिचय जापानी अधिकारियों ने दिया। साथ ही सभी योरोपियन व्यापारी जापान से निकाल भी दिये गये। केवल थोड़े से डच लोगों को, एक बहुत ही अपमानजनक अवस्था में डेस्मिमा के द्वीप में, जहाँ नागासाकी का बन्दरगाह है, रहने की आज्ञा मिल सकी। उनके भी व्यापार पर कठोरतापूर्वक कर लगाये गये। अन्य सभी योरोपियनों को जापान के किनारे पर उतरने तक की मनाही कर दी गई; अन्यथा करने पर मृत्यु का दण्ड निर्धारित किया गया। विदेशियों के प्रति ईर्ष्या और असन्तोष का यह वातावरण इतना घना हो उठा कि जापानियों का भी देश से बाहर जा सकने का अधिकार छीन लिया गया। यहाँ तक कि कोई जापानी अपने पड़ोसी देश चीन तक में नहीं जा सकता था और जो किसी प्रकार चला भी जाता था तो उसे

बैठे थे और जापान भर मे केवल शोगुनो को ही राजा का दर्शन करने का अधिकार प्राप्त था। शोगुन का इतना दबदबा था कि योरोपियन यात्री उसे ही सम्राट् समझने लगे थे। यह भूल न केवल १६वी-१७वी शताब्दी के सीधे-सादे धर्म-प्रचारको ने ही की बल्कि १६वीं शताब्दी के कूटनीतिज्ञ राजपुरुषो तक ने की। बात भी कुछ ऐसी ही थी कि विदेशी एक ऐसे पवित्र सम्राट् का नाम तो सुनते थे, जो ईश्वर का अंश समझा जाता था, किन्तु कियोतो मे भी जाकर उसे न देख पाना उन्हे एक विचित्र बात जँचती थी। इस रहस्य को न समझ सकने के कारण वे वास्तविक शासन-यन्त्र का संचालन करनेवाले शोगुनो को ही यदि सम्राट् समझ बैठे तो कोई आश्चर्य की बात नही थी। येदो के महान् नगर मे, जो विस्तार, सम्पत्ति और आबादी की दृष्टि से सम्राट् की पवित्र राजधानी किओतो से भी कही बढ़-चढ़कर था, रोम, मैड्रिड और लिस्बन से आनेवाले ईसाई धर्म प्रचारकों को शोगुनो का प्रासाद स्वर्णमय प्रतीत होता था। ऐसा ही था शोगुनो का आतङ्कपूर्ण वैभव।

अन्त में जब योरोप के लोगो ने जापान की भूमि पर, न केवल व्यवसायियों की तरह, बल्कि अधिकार के रूप में बलपूर्वक व्यापार-क्षेत्र की मांग करने को, दुबारा क़दम रक्खा, तब तक भी सम्राट् का अस्तित्व उनकी दृष्टि में एक कपोल-कल्पना ही था। वे क्रियात्मक रूप में शोगुनों को ही सम्राट् समझते थे। उन्हीं के साथ उन्हें काम पड़ता था, अतएव जापान का इतिहास और यहाँ की संस्थाओं की जानकारी न रखने के कारण शोगुनों को ही वे लोग क़ानूनी सम्राट् भी मानने लगे थे। विदेशियों ने १८५० ई० के बाद जापान की भूमि पर व्यापारिक सुविधाओं की प्राप्ति और मन्दिरों की स्थापना के लिए जापान के

बैठे थे और दूसरी ओर यह भी अनुभव कर चुके थे कि शोगुनों की शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गई है और द्वैतशासन की प्रणाली का अन्त होना अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार एक दृढ़ केन्द्रीय शासन की आवश्यकता अनुभव करके एक प्रमुख सरदार ने शोगुन के पास पत्र भेजा और उसे अपने पद से इस्तीफा देने की सलाह दी। इस समय जापान का वायुमंडल सामन्त-सरदारों की महत्त्वाकांक्षाओं, पारस्परिक ईर्ष्याओं और षड्यन्त्रों से उत्तेजित हो उठा था। इसके साथ ही साधारण जनता की भावनायें नैराश्य की अन्तिम अवस्था तक पहुँच गई थीं और दूसरी ओर विदेशी लोग भी अपनी स्थिति दृढ़ करने के लिए सतत प्रयत्न कर रहे थे। ऐसे समय में, १८६८ ई० में, एक क्रान्ति हुई जिसमें शोगुन ने विवश होकर पद-त्याग कर दिया और केन्द्रीय राष्ट्रीय सरकार सीधे सम्राट् की अधीनता में फिर स्थापित हुई। यद्यपि यह सत्य है कि जापान के इतिहास में यह बहुत ही महत्त्व का परिवर्तन था किन्तु इसे किसी अर्थ में क्रान्ति नाम नहीं दिया जा सकता, जैसा कि अधिकांश लेखकों ने किया है। इस परिवर्तन से यद्यपि जापान एक सामन्त-प्रधान देश से एक प्रकार के वैधानिक राजतंत्र के रूप में परिणत अवश्य हो गया तथापि देश की सामाजिक व्यवस्था में कोई भी मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ। वास्तव में अत्यन्त साधारण ऐतिहासिक प्रक्रिया के सिलसिले में होनेवाले इस परिवर्तन से शक्ति एक गुट के हाथों से दूसरे गुट के हाथों में हस्तान्तरित हो गई। योग्य और महत्त्वाकांक्षी व्यक्तियों के एक समूह ने यह समझ लिया था कि शोगुन की शक्ति भीतर ही भीतर खोखली हो गई है, अतः उन्होंने शीघ्र ही सम्राट्-तंत्र की "आड़" लेकर उसके झण्डे के नीचे शोगुन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह के नेता थे

में सम्राट् के उद्देश्यों की चर्चा करते हुए कहा गया था कि उच्च और निम्न दोनों ही वर्गों के लोग समान समझे जायँगे और सामाजिक व्यवस्था पूरी तरह नियन्त्रित रक्खी जायगी। यह भी कहा गया था कि यह आवश्यक है कि सैनिक और नागरिक शक्तियाँ एक जगह केन्द्रित कर दी जायें, हर वर्गों के अधिकार सुरक्षित कर दिये जायँगे और इस तरह सम्पूर्ण राष्ट्र की भावनाओं और आकांक्षाओं को सन्तुष्ट रखने का प्रयत्न किया जायगा। सामाजिक व्यवस्था की चर्चा करते हुए उक्त प्रतिज्ञा-पत्र में यह स्पष्ट घोषित कर दिया गया था कि बहुत दिनों के पुराने और असभ्य रीति-रिवाज तोड़ दिये जायँगे और न्याय में निष्पक्षता के व्यवहार की पूरी व्यवस्था की जायगी, तथा सारे संसार से विद्या और ज्ञान का अर्जन करके साम्राज्य की नींव सुदृढ़ बनाई जायगी। यह घोषणा "इम्पीरियल चार्टर ऑफ़ ओथ" कहलाती है। अब उक्त चार्टर काफ़ी परिवर्तित हो गया है और उसका नवीन रूप निम्न प्रकार है :—

(१) विस्तृत मताधिकार के आधार पर व्यवस्थापिका सभा की स्थापना की जायगी और इस तरह जनता के राजनैतिक मतों को अत्यधिक महत्त्व दिया जायगा।

(२) शासक और शासित दोनों श्रेणियों के निरन्तर प्रयत्न से समूचे राष्ट्र की भलाई के लिए कार्य किये जायँगे।

(३) सारी प्रजा—चाहे वह सैनिक हो या साधारण, नागरिक-राष्ट्र के लिए सब कुछ करने को प्रस्तुत रहेगी और अपना उचित कर्त्तव्य पालन करने में कभी आलस्य न करेगी।

(४) सभी व्यर्थ और मूर्खतापूर्ण रिवाज बन्द किये जायँगे। न्याय और सत्य की प्रेरणा से ही सारे शासन-कार्य संचालित

में सम्राट् के उद्देश्यों की चर्चा करते हुए कहा गया था कि उच्च और निम्न दोनों ही वर्गों के लोग समान समझे जायँगे और सामाजिक व्यवस्था पूरी तरह नियन्त्रित रक्खी जायगी। यह भी कहा गया था कि यह आवश्यक है कि सैनिक और नागरिक शक्तियाँ एक जगह केन्द्रित कर दी जायँ, हर वर्गों के अधिकार सुरक्षित कर दिये जायँगे और इस तरह सम्पूर्ण राष्ट्र की भावनाओं और आकांक्षाओं को सन्तुष्ट रखने का प्रयत्न किया जायगा। सामाजिक व्यवस्था की चर्चा करते हुए उक्त प्रतिज्ञा-पत्र में यह स्पष्ट घोषित कर दिया गया था कि बहुत दिनों के पुराने और असभ्य रीति-रिवाज तोड़ दिये जायँगे और न्याय में निष्पक्षता के व्यवहार की पूरी व्यवस्था की जायगी, तथा सारे संसार से विद्या और ज्ञान का अर्जन करके साम्राज्य की नींव सुदृढ़ बनाई जायगी। यह घोषणा "इम्पीरियल चार्टर ऑफ ओथ" कहलाती है। अब उक्त चार्टर काफी परिवर्तित हो गया है और उसका नवीन रूप निम्न प्रकार है :—

(१) विस्तृत मताधिकार के आधार पर व्यवस्थापिका सभा की स्थापना की जायगी और इस तरह जनता के राजनैतिक मतों को अत्यधिक महत्त्व दिया जायगा।

(२) शासक और शासित दोनों श्रेणियों के निरन्तर प्रयत्न से समूचे राष्ट्र की भलाई के लिए कार्य किये जायँगे।

(३) सारी प्रजा—चाहे वह सैनिक हो या साधारण, नागरिक-राष्ट्र के लिए सब कुछ करने को प्रस्तुत रहेगी और अपना उचित कर्तव्य पालन करने में कभी आलस्य न करेगी।

(४) सभी व्यर्थ और मूर्खतापूर्ण रिवाज बन्द किये जायँगे। न्याय और सत्य की प्रेरणा से ही सारे शासन-कार्य संचालित

तोड़ दी गई। इसी बीच १८७१ के अगस्त में सामन्त सरदारों की संस्था का अन्त कर देने के लिए राजाज्ञा जारी हो चुकी थी। उक्त राजाज्ञा के द्वारा सामन्त सरदार कर देनेवाले इलाकेदारों (Prefectures) के रूप में परिवर्तित कर दिये गये।

जापान की प्रारम्भिक राज-पद्धति के अध्ययन में उक्त घटना का अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण स्थान है; क्योंकि सामन्त-प्रथा के विनाश के साथ विभिन्न स्थानीय शक्तियों की विशृंखलता भी समाप्त हो गई और केन्द्रीभूत शासन तथा व्यवस्था की ओर जापान की राजनीति अग्रसर हुई। अलग-अलग गुटबन्दियों के अस्वास्थ्यकर शासन और राजनीतिक-विशृंखलता की (Separationist) मनोवृत्ति की वृद्धि को रोकने के लिए एक केन्द्रीय नौकरशाही की स्थापना उक्त परिवर्तन-काल के लिए अत्यन्त आवश्यक थी। अगर ऐसा न हुआ होता तो जापान शतशः छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त होकर मध्ययुगीय ईर्ष्या और द्वेष का क्रीड़ास्थल ही बना रह जाता। निश्चय ही यह तत्कालीन राज-पुरुषों की बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता का प्रमाण है कि उन्होंने शीघ्रातिशीघ्र सामन्त-प्रथा का विनाश करके राष्ट्रीयता के आधार पर एक सुदृढ़ केन्द्रीय शासन की स्थापना की। उसी के फलस्वरूप आज जापान का स्थान संसार के अग्रणी राष्ट्रों में है।

नव-निर्माण-काल पर एक दृष्टि

सन् १८७१ ई० में केन्द्रीय शासन की प्रणाली में संशोधन किये गये, जिसके अनुसार बड़ी और छोटी व्यवस्थापिका सभाओं तथा प्रबन्धकारी बोर्ड को नये नाम और नये रूप दिये गये। बड़ी व्यवस्थापिका सभा को, जिसे पहले "[illegible]" कहते थे, 'सेई-इन' (केन्द्रीय बोर्ड) नाम दिया गया। वैसे ही छोटी

संस्था की स्थापना के बहुत पूर्व, न केवल मध्यवर्गीय बुद्धि-जीवियों में; बल्कि नौकरशाही में भी जनतन्त्र के विचार प्रवेश करने लगे थे। 'जेनरो इन' की नीति-द्वारा लगाये गये बन्धनों के विरोध-स्वरूप 'तोसा' गोत्र (Clan) के प्रमुख राजपुरुष इतागाकी महोदय ने 'दाजोक्वान' से इस्तीफा दे दिया और १८८१ ई० में 'जीयू-तो' (लिबरल दल) की स्थापना कर डाली। उसके दूसरे ही साल 'हिज़ेन' गोत्र (Clan) के श्री ओकुमा ने 'काइशिन-तो' (सुधार दल) की नींव डाली। १८७७ और १८८५ ई० के बीच में और भी बहुत से राजनीतिक दलों की स्थापना हुई जिनमें प्रमुख और प्रभावशाली उक्त दो दल ही थे।

उदार-विचारों (Liberalism) की इन अभिव्यक्तियों से गुट-तन्त्र (Oligarchy) का आसन डोल उठा और उनका प्रधान राजकुमार ईटो जनतन्त्रात्मक भावनाओं के दमन के लिए व्यवस्थायें और योजनायें बनाने में दत्तचित्त हो गया। इस सम्बन्ध में उसका पहला कार्य १८८४ ई० में एक कुलीन-तन्त्र (Peerage) की स्थापना करना था। वास्तव में ईटो का यह कार्य अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ। इस कार्य से जापान के प्रभावशाली और सम्पन्न परिवारों की सहानुभूति प्राप्त करने में तत्कालीन-शासन को बड़ी ही सफलता मिली। न केवल इतना ही बल्कि एक बड़ा लाभ इससे यह भी हुआ कि विभिन्न वर्गों के लोगों में कुछ अनुदार (Conservative) विचार के लोगों के दल बने जिन्हें प्रिवी कौन्सिल की सदस्यता के योग्य ठहराया गया और अवसर पड़ने पर उनमें से सदस्य मनोनीत भी होने लगे। इन सबका परिणाम यह हुआ कि लिबरल वैधानिक आन्दोलन के लिए एक भूमि तैयार हो गई, क्योंकि सम्पन्न परिवारों और साधारण मध्य-वर्गवालों में एक शक्ति-संतुलन स्थापित हो गया।

दूसरा अध्याय

वैधानिकता का आन्दोलन

यह कहना किसी भी अर्थ में असत्य नहीं होगा कि आधुनिक जापान में वैधानिक सरकार नहीं है; फिर भी एक विधान है और उस विधान का एक मनोरंजक इतिहास भी। शोगुनेट के पतन के बाद सम्राट् की ओर से घोषणा के रूप में जो प्रतिज्ञा-पत्र (Emperor's Charter of Oath) प्रकाशित किया गया था वह जितना आशाप्रद था, जापान के इतिहास का जनतन्त्रात्मक विकास उतना ही निराशाप्रद है।

फिर भी वैधानिक सरकार की स्थापना का आधार उस घोषणा-पत्र ही बना। घोषणा का एक वाक्य था—'वाद-विवाद-द्वारा निर्णय करने की प्रथा चलाई जायगी और हर मसला जन-मत से ही तय हुआ करेगा।' वास्तव में इस वाक्यांश का पूर्ण अर्थ उन राजपुरुषों ने भी नहीं समझा था, जिन्होंने इसे रचा था, क्योंकि सम्राट्-पद की पुनः प्रतिष्ठा करनेवाले सभी राज-पुरुष सामन्त-प्रथा के आदर्शों और सिद्धान्तों से अत्यन्त प्रभा-वित थे। वे अपने वर्ग के बड़प्पन की आत्म-चेतना से इतने पूर्ण थे कि संभवतः उनके लिए जन-तंत्र की कल्पना तक करना भी असंभव था। कम से कम उनके जनतंत्र का अर्थ सर्वसाधा-रण की सुख-सुविधा नहीं था।

इस कथन के लिए प्रमाण देने की आवश्यकता शायद

सम्राट् 'मुत्सिहितो' स्वयं अभी नाबालिग था और अन्य गोत्रों के लोग दलबन्दी की दौड़ में पिछड़ गये थे। किन्तु इसके साथ ही अन्य सामन्त गोत्रवालों में, जिन्होंने भी सम्राट्-पद के प्रत्यानयन में समान ही उद्योग और परिश्रम किया था, असन्तोष घर करने लगा। इनमें प्रमुख थे 'तोसा' और 'हिजेन' गोत्र के सामन्त, जिनका दावा था कि अगर सर्वसाधारण को राय जाहिर करने का अवसर दिया जाता तो उनकी सेवायें और उनके बलिदान इतने प्रौढ़ थे कि कोई कारण नहीं जिससे उन्हें उच्चाधिकारों से वंचित रहना पड़ता। 'तोसा' गोत्र के प्रमुख राजपुरुष 'इतागाकी' इस असन्तुष्ट वर्ग के अगुआ बने। वे स्वयं नई सरकार के अधीन मन्त्रि-पद को सुशोभित कर चुके थे तथा साथ ही शोगुनेट के विरुद्ध आन्दोलनकारियों में अत्यन्त प्रमुख स्थान रखते थे। इन असन्तुष्ट वर्गों का नेतृत्व ग्रहण करते ही उन्होंने मन्त्रि-पद से इस्तीफा दे दिया, जैसा कि पहले कहा जा चुका है। १८७३ में उन्होंने अपने को सरकारी पदों की मरीचिका से मुक्त किया और [illegible] से अपना एकमात्र उद्देश्य बना लिया, देश में वैधानिक शासन की स्थापना के लिए जनमत तैयार करना, उसके लिए आन्दोलन करना तथा तत्कालीन परतन्त्र नौकरशाही का विरोध करना, उसके खिलाफ सर्वत्र असन्तोष का बीज बोना। १८७८ का समय एक जागरण का समय था, और नये परिवर्तनों तथा नये आन्दोलनों ने साधारण लोगों में भी राजनीतिक ज्ञान की एक जिज्ञासा और राजनीतिक अधिकारों के लिए एक जागरण का भाव पैदा कर दिया था। सभी देश में समाचार-पत्र भी पनप रहे थे जो सभी सरकारी बन्धनों से मुक्त होने के कारण लोकप्रिय आन्दोलनों का भी जोरदार समर्थन करते थे। सभी पत्रों की एक ही आवाज थी, और वह थी जापान में एक वैधानिकता के

बनाये गये, किन्तु फल कुछ भी नहीं हुआ। आन्दोलनकारी प्रसन्नता एवं गर्व के साथ सैकड़ों हजारों की संख्या में जेलखानों को भरने लगे और उनकी जगहों पर नये लोग आ-आकर आन्दोलन का संचालन करने लगे। दमनकारी कानूनों की खुलेआम अवज्ञा शुरू कर दी गई। न केवल इतना ही बल्कि हिंसा और हत्या का भी बाजार गर्म हो उठा। सरकार के कितने ही उच्च पदस्थ कर्मचारियों को जान से हाथ धोने पड़े। जो बच गये उन्हें भी पुलिस के इतने कठोर पहरे और निगरानी में रहना पड़ने लगा कि उनका भी जीवन कैदियों के जीवन से किसी अर्थ में अच्छा नहीं रह गया।

इसी बीच, १८७७ ई० में एक ऐसा संकट आ उपस्थित हुआ कि उक्त संघर्ष कुछ दिनों के लिए अकस्मात् ही रुक गया। सामन्त-प्रथा की अवशिष्ट शक्तियों ने एक बार अपनी समूची शक्ति लगाकर, नई सरकार के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह किया। वैधानिकता के लिए आन्दोलन करनेवालों ने ऐसे अवसर पर भी सरकार का विरोध करते जाना उचित नहीं समझा, क्योंकि सामन्त-प्रथा के फिर से स्थापित हो जाने का अर्थ होता, मध्य-युग का अपनी सारी कुरूपताओं के साथ आ उपस्थित होना। और यह परिणाम जितना ही अरुचिकर तथा अवाञ्छनीय सरकार के लिए था, उतना ही वैधानिकता के लिए आन्दो-लन करनेवाले राजनीतिक दलों अथवा राजपुरुषों के लिए। अन्त में धन-जन की भीषण क्षति के पश्चात् विद्रोह दबा दिया गया।

विद्रोह के दबते ही आन्दोलन फिर उसी जोर-शोर से उठ खड़ा हुआ। पुनः दुगुने उत्साह के साथ आक्रमण और अप-मान की [illegible] चलने लगीं। यहाँ तक कि १८७८ ई० में

इस घोषणा ने आन्दोलन को एकदम ठंडा कर दिया। किसी को भी इस पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं प्रतीत हुआ। फिर भी गुट-तंत्र (Oligarchy) की असीम शक्ति और उसके अनियन्त्रित अधिकार अधिकांश कायम ही रहे जिसके कारण नौकरशाही के प्रति सर्वसाधारण की घृणा किसी भी तरह दूर न हो सकी। इक्के-दुक्के हमले अत्याचारी और स्वेच्छाचारी अधिकारियों पर होते ही रहे तथा सरकार की ओर से भी इन आतंकवादी-कार्रवाइयों के दमन के नाम पर प्रमुख आन्दोलनकारी जेलों में भरे जाते रहे, उग्र समाचार-पत्रों का गला घोंटा जाता रहा, निर्वासन का बाजार गर्म रहा तथा सार्वजनिक सभाओं में मत-प्रदर्शन तक की मनाही जारी रही।

किन्तु इसके साथ ही तत्कालीन सरकार भी यह पूरी तरह समझ गई कि शासन का कोई वैधानिक ढांचा गढ़कर खड़ा किये बिना देश में शान्ति और व्यवस्था स्थापित नहीं हो सकती। मंत्रिमंडल में ओकुबो की हत्या और ओकुमा के पदत्याग के बाद एक ही योग्य व्यक्ति रह गया था, राजकुमार ईटो—यही शोगुन-शासन का अकेला विरोधी ईटो। अतएव सरकार की ओर से उस ही विदेशों में विभिन्न देशों की वैधानिक व्यवस्था का अध्ययन और मनन करने को भेजा गया। वह काफी दिनों तक योरप और संयुक्त-राष्ट्र—अमेरिका के विधानों की छान बीन करने के पश्चात् जापान वापस लौटा।

विधान का निर्माण

विदेशों से लौटते ही राजकुमार ईटो की अध्यक्षता में एक 'विधान निर्मात्री समिति' (Constitution Drafting Committee) स्थापित की गई। ईटो ने पूरी तरह से सन् १८८६ में

गई कि 'राज्य के प्रत्येक विभाग के कार्य उचित ढंग पर बाँट दिये जायँगे।'

सम्राट् के अधिकारों में जापानी व्यवस्थापिकाओं की बैठक बुलाने, उसे बन्द करने और भंग करने के अधिकार भी शामिल हैं। उसे व्यवस्थापिकाओं-द्वारा पास किये गये निर्णयों को अस्वीकार करने के साथ ही साथ आवश्यकता होने पर विशेष कानून (Ordinances) पास करने का भी अधिकार हासिल है। राजकुमार ईटो ने जापानी विधान की व्याख्या करते हुए यद्यपि इंग्लैंड के सम्राट् के 'Power of Veto' (व्यवस्थापिका सभा-द्वारा पास किये गये कानूनों को रद्द करने के अधिकार) और जापानी सम्राट् के 'Power to refuse his sanction' (यानी व्यवस्थापिका-सभा-द्वारा स्वीकृत कानून को लागू करने की मंजूरी न देने का अधिकार) में भेद समझाने की हरचन्द कोशिश की है; पर इन दो अधिकारों में कोई अन्तर स्पष्ट क्या, अस्पष्ट भी नहीं दृष्टिगोचर होता।

विधान के अनुसार सम्राट् सेना तथा नौसेना का सर्व प्रधान अध्यक्ष होता है। सेना का 'जेनरल स्टाफ ऑफिस', जो जापानी सेना का वास्तविक हाई कमाण्ड होता है, विधान के अनुसार केवल सम्राट् को सेना-सम्बन्धी मामलों में खास सलाह देने के लिए ही स्थापित है। सैनिक मामलों में विधान के अनुसार सम्राट् पर कोई नियन्त्रण नहीं है वह जिस प्रकार चाहे उसकी व्यवस्था और उसका शासन करे। वह मन्त्रियों से इस सम्बन्ध में सलाह ले सकता है किन्तु "शाही पार्लमेंट को उसमें हस्तक्षेप करने का कोई भी अधिकार नहीं है।" जैसा कि अभी कहा जा चुका है, सम्राट् के नाम पर सैनिक मामलों की व्यवस्था 'जेनरल-स्टाफ' के हाथों में है, साथ ही [illegible] भी [illegible] इसमें [illegible] लगी। फल यह हुआ कि जापान की सेना सरकार से [illegible]

राज्य के प्रति 'प्रजा' के कर्तव्यों में प्रत्येक पुरुष के लिए अनिवार्यतः सैनिक-सेवा करना शामिल है जिसके लिए कानून द्वारा व्यवस्था की गई है। उन्हें कानून द्वारा निर्धारित टैक्स आदि बिना किसी विरोध के अदा करते जाना चाहिए। यह जनता का पवित्र कर्तव्य बतलाया गया है।

सम्राट् का दरबार 'इम्पीरियल हाउस लॉ' के अनुसार नियमित ढंग पर संचालित होता है। उक्त कानून में संशोधन करने का अधिकार 'इम्पीरियल फेमिली कौन्सिल' नामक संस्था का है, जिसके सदस्य होते हैं, शाही परिवार के राजकुमार लोग, जो केवल सम्राट् के प्रति ही उत्तरदायी होते हैं और एकमात्र उसी की आज्ञा उनके लिए आदेश हो सकती है। यद्यपि उक्त कौन्सिल के दैनिक साधारण कार्यों में प्रिवी कौन्सिल के अध्यक्ष शाही गृह-कार्य के मंत्री, न्याय-मंत्री तथा सर्वोच्च न्यायालय के अध्यक्ष का सहयोग भी रहता है। उक्त कौन्सिल केवल शाही परिवार और राज-वंशवालों से सम्बन्ध रखनेवाले मामलों की देखरेख के लिए ही स्थापित है। शाही परिवार का कोई भी सदस्य बिना सम्राट् की आज्ञा के न तो गिरफ्तार ही किया जा सकता है और न अदालत के सामने उपस्थित किया जा सकता है। उनके विरुद्ध दीवानी की कार्यवाहियों के देखने का अधिकार भी केवल टोकियो की खास अदालत को ही है। सम्राट् के दरबार की दैनिक देख-रेख और व्यवस्था का उत्तरदायी अधिकारी 'इम्पीरियल हाउस-होल्ड मिनिस्टर' होता है, जो राज्य की व्यवस्था के जिम्मेदार मन्त्रिमण्डल से अलग और स्वतंत्र होता है। शाही दरबार और गृह-कार्य के मद में स्थायी तौर पर ४,५००,००० येन वार्षिक की व्यवस्था की गई है। यह व्यवस्था राज्य की ओर से है, जिसमें अतिरिक्त कई करोड़ येन वार्षिक की आय शाही परिवार

राजनीतिक दल

जापान के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ फूकीज़ावा ने दूसरी बार इँग्लैंड की यात्रा से लौटने के बाद की अपनी मनोदशा का वर्णन अपने आत्मचरित्र में यों किया है—"मैं बिलकुल नहीं समझ पाता था कि राजनीति में निर्वाचन का क़ानून क्या चीज़ होता है? इसलिए जब कभी मैं पूछता कि निर्वाचन के नियम क्या हैं और पार्लामेन्ट देश या जनता की क्या सेवा कर सकती है, तो किसी केवल हँसकर रह जाते थे। उनके लिए प्रश्न यद्यपि साधारण था; किन्तु मेरे लिए उसका समझ सकना भी मुश्किल था। मैं करता भी क्या? मैं मजबूर था। वहाँ पार्टियाँ हैं—अनुदार (Conservative) और उदार (liberal)—जो गुटबन्दियों की तरह प्रतीत होती हैं पर वे बिना किसी जन-ख़राबी के एक दूसरे से भयंकर रूप में लड़ा करती हैं। यह कैसे सम्भव होता है, यह समझना मुझे बड़ा कठिन प्रतीत होता था। उनका कहना है कि ये राजनीतिक झगड़े हैं जो शान्तिपूर्वक सामाजिक ढाँचे के भीतर रहकर चलते रहते हैं।

"मेरी समझ में नहीं आता था कि इसका अर्थ क्या है? मैं देखता था कि यद्यपि उनके दोनों दल परस्पर शत्रु की तरह हैं; फिर भी उनके सदस्य एक ही टेबुल पर खाते-पीते हैं। मेरी समझ में यह भी बात नहीं आती थी। मैं समझता हूँ कि इन सब चीज़ों के समझने की कोशिश करना भी एक बड़ा प्रयास था।"

यह है १९वीं सदी के अन्तिम चरण की राजनीतिक चेतना का उदाहरण जो जापान के प्रमुख नागरिकों और राष्ट्र-निर्माताओं में हमें देखने को मिलता है।

राजनीतिक दल

जापान के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ फूकीजावा ने दूसरी बार इंग्लैंड की यात्रा से लौटने के बाद की अपनी मनोदशा का वर्णन अपने आत्मचरित्र में यों किया है—"मैं बिलकुल नहीं समझ पाता था कि राजनीति में निर्वाचन का कानून क्या चीज होता है? इसलिए जब कभी मैं पूछता कि निर्वाचन के नियम क्या हैं और पार्लामेन्ट देश या जनता की क्या सेवा कर सकती है, तो विदेशी केवल हँसकर रह जाते थे। उनके लिए प्रश्न यद्यपि साधारण था; किन्तु मेरे लिए उसका समझ सकना भी मुश्किल था। मैं करता भी क्या? मैं मजबूर था। वहाँ पार्टियाँ हैं—अनुदार (Conservative) और उदार (liberal)—जो गुट-बन्दियों की तरह प्रतीत होती हैं पर वे बिना किसी खून-खराबी के एक दूसरे से भयंकर रूप में लड़ा करती हैं। यह कैसे सम्भव होता है, यह समझना मुझे बड़ा कठिन प्रतीत होता था। उनका कहना है कि ये राजनीतिक झगड़े हैं, जो शान्तिपूर्वक सामाजिक ढाँचे के भीतर रहकर चलते रहते हैं।

"मेरी समझ में नहीं आता था कि इसका अर्थ क्या है? मैं देखता था कि यद्यपि उनके दोनों दल परस्पर शत्रु की तरह हैं; फिर भी उनके सदस्य एक ही टेबुल पर खाते-पीते हैं। मेरी समझ में यह भी बात नहीं आती थी। मैं समझता हूँ कि इन सब चीजों के समझने की कोशिश करना भी एक महा प्रयास था।"

यह है १९वीं सदी के अन्तिम चरण की राजनीतिक चेतना का उदाहरण जो जापान के प्रमुख राजपुरुष और राष्ट्र-निर्माताओं में हमें देखने को मिलता है।

शिकार बन जाया करते थे। सन् १९०० में राजकुमार ईटो ने यह अनुभव किया कि अब वह युग आगया है जब उनकी नौकरशाही का प्रभुत्व भी बिना एक मजबूत राजनीतिक दल का समर्थन प्राप्त किये क़ायम नहीं रह सकेगा। और तभी से जापान में सच्चे अर्थ में दल-गत-राजनीति का विकास और संगठन प्रारम्भ हुआ, यद्यपि फिर भी अधिकांश दलों के नेता नौकरशाही-शासन में प्रायः शरीक होते ही रहते थे, चाहे वे ओकूमा या इतागाकी जैसे लिबरल नेता हों अथवा ओजाकी और इनूका जैसे उग्रतावादी।

उन दिनों चोशू-गोत्र के राजपुरुषों के हाथ में शासन था, ऐसा हम पहले ही बता चुके हैं, किन्तु उनके भीतर भी पारस्परिक मतभेद कुछ सिद्धान्तों को लेकर प्रारम्भ हो गया था। यहाँ तक कि ईटो और यामागाता के मतभेद इतने प्रबल हो उठे कि गुटतन्त्र के अद्वितीय समर्थक ईटो को भी लीक से हटना पड़ा, जो वास्तव में उन दिनों के साधारण नौकरशाहों के लिए एक असाधारण बात थी। न केवल इतना ही बल्कि इस घटना को ईटो की राजनैतिक दूरदर्शिता का ज्वलन्त प्रमाण भी कहा जा सकता है। ईटो ने शीघ्र ही "रिक्केन-सेयूकाई" नामक एक दल की स्थापना की, जिसका आधार साधारणतया लिबरल दल के सिद्धान्त ही थे।

लिबरल दल के जन्मदाता इतागाकी ने १८८२ में अपने दल की स्थापना करते हुए अपने भाषण में कहा था—"यद्यपि इतागाकी की हत्या की जा सकती है; किन्तु स्वतन्त्रता चिरजीवी रहेगी।" इसी इतागाकी के लिबरल दल ने प्रमुख नौकरशाह ईटो के इस परम्परागत का भी लेकर स्वागत किया और ईटो के

देहातो के भू स्वामियो का हित। इस समय तक जापान व्यावसायिक क्षेत्र में काफी उन्नति कर चुका था देश की तत्कालीन प्रगति के लिए अनिवार्य पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था स्थापित हो चली थी। १९१३ मे 'रिक्केन-दोशिकाइ' नामक एक अन्य राजनीतिक दल का अध्यक्ष हुआ जेनरल कत्सुरा। इस दल ने अपना राजनीतिक आधार बनाया नगरो के व्यवसाय और व्यापारिक हितों को। इस प्रकार उदारतावादी राजनीति के समर्थन की आड मे प्राचीन ग्रामीण-आर्थिक व्यवस्था के हिमायती जमींदार लोगो के हितों तथा नवीन-राष्ट्रीय (पूँजीवादी) आर्थिक-व्यवस्था के पक्षपाती पूँजीपतियों के हितो का एक सघर्ष-सा प्रारम्भ हो गया।

धीरे-धीरे 'दोशिकाइ' दल अत्यन्त सुसगठित और प्रभावशाली बन गया। जेनरल कत्सुरा की मृत्यु के बाद उक्त दल का अध्यक्ष हुआ 'बैरन कातो' जो प्रसिद्ध करोड़पति बैरन इवासाकी का बहनोई था। उसकी अध्यक्षता मे दल का नाम परिवर्तित होकर 'केन्सिकाइ' हो गया। शीघ्र ही इस दल ने ओकुमा आदि उदार नेताओं का साथ देना प्रारम्भ किया और ओकुमा के (१९१४-१६) अन्तिम-मन्त्रिमण्डल का तो वह पूरा पूरा सहायक रहा। यहाँ तक कि जब ओकुमा ने पदत्याग किया तो उसने कातो को अपना उत्तराधिकारी बनाये जाने की सिफारिश की, किन्तु अभी इटो तथा उनके सहयोगियो का प्रभाव अत्यन्त गम्भीर था, जिसके कारण मार्शल तेराउची नामक एक तानाशाह प्रधान मन्त्री बना। १९१७ के निर्वाचन में उसका समर्थन करनेवाले इटोद्वारा स्थापित 'सेयुकाई' दल की भारी जीत हुई, किन्तु साल भर बाद ही कृषि-क्षेत्रों के दंगे फसाद और असन्तोष के कारण तेराउची के मन्त्रि-मण्डल को इस्तीफा दे देना पड़ा।

में एक सैनिक-तन्त्र है और उसी ढंग का शासन आज भी जापान में चल रहा है।

जापान की राजनीतिक पार्टियों को नियमपूर्वक सरकारी स्वीकृति नहीं प्राप्त है। निर्वाचन-सम्बन्धी कानूनों में भी उनका कोई वर्णन नहीं आता है, सभी उम्मीदवार 'व्यक्तिगत आधार' पर खड़े हुए ही माने जाते हैं। यहां तक कि व्यवस्थापिकाओं के भीतरी प्रबन्ध-सम्बन्धी नियमों में भी उनका कोई ज़िक्र नहीं है। राजनीतिक दलों को अपनी चल अथवा अचल सम्पत्ति रखने का भी कोई अधिकार नहीं है। फलतः दलों के नेता अपने निजी नामों से अथवा दो-चार नेताओं-द्वारा स्थापित सामाजिक क्लबों के नाम से धन रखते हैं, जिससे दलों का काम चलता है।

दलों के अध्यक्ष 'सोसाई' कहलाते हैं, जो पहले स्वयम्भू अथवा अपने पूर्ववर्ती द्वारा मनोनीत हुआ करते थे। आगे चलकर उनका निर्वाचन होने लगा; किन्तु यह निर्वाचन-पद्धति अत्यन्त अस्पष्ट और रहस्यमय ढंग की होती है, क्योंकि न तो कोई बाक़ायदा चुनाव होते हैं और न पार्टियों के प्रधान कार्यालय से उम्मीदवारों के नाम ही प्रकाशित किये जाते हैं। अक्सर गृह-विभाग का सरकारी-मन्त्री-पद किसी भी दल के सभापति-पद को प्राप्त करने की पहली सीढ़ी समझी जाती है।

जापान की राजनीति में दल की सदस्यता का भी कोई स्पष्ट आधार नहीं होता। यद्यपि देश के दोनों प्रमुख दल अपने सदस्यों की नामावली अपने कार्यालयों में रखते हैं, फिर भी उनमें से अधिकांश या तो गत निर्वाचनों में किसी विशेष दल के लिए वोट देने के कारण अथवा किसी स्थान सभा पर दल का कोई विशेष कार्य कर देने के कारण ही दल के सदस्य समझ लिये जाते हैं। ऐसे बहुत थोड़े लोग होंगे जो सुव्यवस्थित

व्यवस्थापिकायें

जापान की व्यवस्थापिकाओं को विधान के मुताबिक कानून के मसविदे पर वाद-विवाद करने का तो अधिकार हासिल है किन्तु उनका निर्णय करने, उन्हें अन्तिम रूप देने का अधिकार नहीं है। एक वाक्य में जापानी व्यवस्थापिकाओं का विधान-सम्मत कार्य यह होता है कि वे कानून बनाने में भाग लें और शासन के सचालन का निरीक्षण करें। "पार्लामेंट के कानून" के अनुसार उन्हें (अ) बिलों के सुनने का अधिकार है, (ब) सम्राट् के पास शासन-सम्बन्धी किन्हीं गड़बड़ियों के बारे में अपील करने तथा उनका ध्यान विशेष राजकीय कार्यों की ओर आकर्षित करने का अधिकार है, (स) सरकार से सवाल पूछने और जवाब तलब करने का अधिकार है और (द) शासन के आर्थिक-प्रबन्धों पर नियन्त्रण रखने का अधिकार है।

इस तरह जापानी व्यवस्थापिकायें, जिनमें सब वर्गों के विशेष अधिकार प्राप्त प्रतिनिधि होते हैं, कानून बनाने के सम्बन्ध में तथा नौकरशाही शासन के सचालन के बारे में केवल सलाह देनेवाली सस्थायें मात्र हैं। यद्यपि यह सही है कि सम्राट की आज्ञा के बाहर व्यवस्थापिकाओं को आर्थिक मामले में पूर्णतः स्वतंत्र अधिकार प्राप्त है, क्योंकि व्यवस्थापिकाओं की स्वीकृति के बिना राष्ट्र के बजट-सम्बन्धी कानून कार्यान्वित नहीं किये जा सकते; फिर भी जापान की राजनैतिक गुटबन्दियों, दल गत-राजनीति के नाम पर फैली भ्रष्टताओं और राजनैतिक दलों की संगठनात्मक शक्तियों के अभाव के कारण व्यवस्थापिकायें अपने इन अधिकारों का भी समुचित उपयोग नहीं कर पाती हैं।

जापान की व्यवस्थापिका में दो सभायें हैं। एक को कहते हैं

जापान की उस वर्तमान सामाजिक व्यवस्था का एक नकशा हमारे सामने खिंच जायगा जिसमें बड़े-बड़े सम्पत्ति-जीवी लोगों के हितों की रक्षा की दृष्टि से ही देश की शासन-नीति संचालित हो रही है। यहाँ तक कि सरदार-सभा की पार्टियों का चन्दा जनता को खिताब बेंचकर और बड़े-बड़े लोगों को सभा का मेम्बर मनोनीत करवाने के वादे पर इकट्ठा किया जाता है।

१९३३ में सरदार-सभा में ६ दल थे, जिनके नाम और सदस्यों की संख्या आदि निम्न प्रकार थी :—

'केनक्यू-काई' (जिसमें काउन्ट, विस्काउन्ट, मार्क्विस, सम्राट् द्वारा मनोनीत सदस्य और उच्चतम कर-दाता लोग शामिल थे) = १४७।

'देनी-काई' (सम्राट्-द्वारा मनोनीत कुछ सदस्य और कुछ बड़े कर-दाता) = ४३।

'कोसी-काई' (बैरन, कुछ सम्राट्-द्वारा मनोनीत सदस्य तथा कुछ बड़े कर दाता) = ७६।

'कोवू-क्लब' (कुछ सम्राट्-द्वारा मनोनीत सदस्य और कुछ बड़े कर-दाता) = ३६।

'दोवा काई' (कुछ सम्राट्-द्वारा मनोनीत सदस्य तथा कुछ बड़े कर-दाता) = ३६।

'कायो-काई' (अधिकांश मार्क्विस और राजकुमार) = ४६।

इनके अतिरिक्त स्वतन्त्र सदस्यों में २ राजकुमार, ४ मार्क्विस, १ काउन्ट, १८ सम्राट्-द्वारा मनोनीत सदस्य, ५ बड़े कर-दाता और ४ इम्पीरियल एकेडेमी के प्रतिनिधि थे।

बाकी १७ सदस्य जो शाही खानदान के राजकुमार हैं, किसी भी दल में शामिल नहीं हैं जिसका कारण स्पष्ट ही है। ऊपर की तालिका के देखने से साफ प्रकट हो जाता है कि इन दलों का बँटवारा

३ चैन ही रह गया और अन्त में सन १६२५ के कानून द्वारा एकदम समाप्त कर दिया गया। इस प्रकार जैसा हम पहले कह चुके हैं, बालिग-पुरुष-मताधिकार जापान के निर्वाचनों का आधार बना। जापान का वर्तमान निर्वाचन-कानून बालिग-पुरुष-मताधिकार की व्यवस्था करता है और २५ वर्ष या उससे अधिक उम्र का प्रत्येक वह पुरुष, जो किसी खास कारण से अयोग्य नहीं घोषित कर दिया गया है, वोट देने का अधिकारी होता है। ३० वर्ष से अधिक उम्रवाले निर्वाचन के लिए उम्मीदवार हो सकते हैं। जिन लोगों को निर्वाचन में भाग लेने या उम्मेदवार होने के अधिकार कानून के मुताबिक नहीं प्राप्त हैं, उनकी किस्में निम्न प्रकार हैं :—

(अ) जो अपने गुजारे के लिए दूसरों पर आश्रित या अर्द्ध-आश्रित हों।

(ब) जो दिवालिया घोषित किये जा चुके हैं और अपने कर्जों का भुगतान नहीं कर सके हैं।

(स) जो सार्वजनिक संस्थाओं या विशिष्ट-व्यक्तियों से अपनी गुजर के लिए भत्ता पाते हैं।

(द) जो जापान के स्थायी निवासी या नागरिक नहीं हैं।

(प) जो ६ वर्षों से ज्यादा के लिए फौजदारी की दफाओं में सजा काट चुके हैं।

(फ) जो कुछ खास दफाओं में ६ साल से कम की भी सजा काट चुके हैं।

मन्त्रि-मण्डल के सदस्यों, प्रधान मन्त्री, व्यवस्थापिका विभाग के अध्यक्षों, मन्त्रियों के पार्लामेंटरी सेक्रेटरी लोग तथा मन्त्रियों के प्राइवेट सेक्रेटरी लोगों को छोड़कर और किसी को भी सरकारी पदों पर रहते हुए साधारण सभा के सदस्य चुने जाने की सुविधा

३ येन ही रह गया और अन्त में सन् १९२५ के कानून-द्वारा एक-दम समाप्त कर दिया गया। इस प्रकार जैसा हम पहले कह चुके हैं, बालिग-पुरुष-मताधिकार जापान के निर्वाचनों का आधार बना। जापान का वर्तमान निर्वाचन-कानून बालिग-पुरुष-मताधिकार की व्यवस्था करता है और २५ वर्ष या उससे अधिक उम्र का प्रत्येक वह पुरुष, जो किसी खास कारण से अयोग्य नहीं घोषित कर दिया गया है, वोट देने का अधिकारी होता है। ३० वर्ष से अधिक उम्रवाले निर्वाचन के लिए उम्मीदवार हो सकते हैं। जिन लोगों को निर्वाचन में भाग लेने या उम्मेदवार होने के अधिकार कानून के मुताबिक नहीं प्राप्त हैं, उनकी किस्में निम्न प्रकार हैं

(अ) जो अपने गुज़ारे के लिए दूसरों पर आश्रित या अर्द्ध-आश्रित हैं।

(ब) जो दिवालिया घोषित किये जा चुके हैं और अपने कर्ज़ों का [illegible] नहीं कर सके हैं।

(स) जो सार्वजनिक संस्थाओं या विशिष्ट-व्यक्तियों से अपनी गुज़र के लिए भत्ता पाते हैं।

(द) जो जापान के स्थायी निवासी या नागरिक नहीं हैं।

(य) जो ६ वर्षों से ज़्यादा के लिए फ़ौजदारी की दफ़ाओं में सज़ा काट चुके हैं।

(र) जो कुछ खास दफ़ाओं में ६ साल से कम की भी सज़ा काट चुके हैं।

मन्त्रि-मण्डल के सदस्यों, प्रधान मन्त्री, व्यवस्थापिका विभाग के [illegible] पार्लामेंटरी सेक्रेटरी लोग तथा मन्त्रियों के प्राइवेट सेक्रेटरी लोगों को छोड़कर और किसी को भी सरकारी पदों पर रहते हुए व्यवस्थापिका सभा के सदस्य बने रहने की सुविधा

इसके अतिरिक्त ६ स्वतंत्र सदस्य भी थे।

उपनिर्वाचनों के बारे में यह नियम है कि जब तक गृह-विभाग का मन्त्री उपनिर्वाचन कराना न चाहे तब तक साधारण-सभा की खाली जगह नहीं भरी जा सकती। इस एक बात से भी जापानी शासन के जनतंत्रात्मक होने के दावे का पर्दा फ़ाश हो जाता है, क्योंकि जनतंत्र के सिद्धान्तों के अनुसार एक उप-निर्वाचन ही, सरकार की लोकप्रियता की सबसे महत्त्वपूर्ण परीक्षा समझा जाता है। अतएव उपनिर्वाचन का होना या न होना सच्चे जनतंत्रात्मक शासन में किसी भी स्वार्थ या हित विशेष के साथ नहीं जोड़ा जा सकता। जापान में ऐसा न करने का एक ही कारण है और वह यह है कि नौकरशाही के हाथ ढीले पड़ने का एक भी अवसर आने देना वहाँ के शासकवर्ग नहीं चाहते। पाठकों को यह जान कर भी आश्चर्य होगा कि १९३[illegible] के बाद से जापान की साधारण सभा में १३ जगहें किसी न किसी कारण खाली हो गई हैं, जिनके भरने के लिए उपनिर्वाचन कराना वहाँ की नौकरशाही ने अभी तक उचित नहीं समझा है।

सरदार-सभा की भाँति साधारण-सभा में भी क़ानून के मुताबिक़ एक अध्यक्ष और एक उपाध्यक्ष होता है। ये दोनों पदाधिकारी सभा के द्वारा निर्वाचित तीन उम्मीदवारों में से सम्राट्-द्वारा मनोनीत किये जाते हैं; और जितने दिन सभा की अवधि रहती है उतने दिनों तक अपने पद पर बने रहते हैं। इसके विपरीत सरदार-सभा का अध्यक्ष भी सम्राट्-द्वारा सात वर्षों के लिए मनोनीत किया जाता है। व्यवहार में प्रथा यह चली आई है कि साधारण सभा का अध्यक्ष सभा के सबसे बड़े दल में से चुना जाता है और उपाध्यक्ष का भी स्थान सदस्यों में से अथवा दूसरे अथवा तीसरे बड़े दल में से [illegible] की

तीसरा अध्याय

राष्ट्रीय शासन

जापान के विधान की एक उपधारा के अनुसार "प्रत्येक कानून, शाही विशेषाज्ञायें और आर्डिनेन्सों पर यदि उनका सम्बन्ध राज्य के शासन से हो तो मंत्रियों के हस्ताक्षर अवश्य होने चाहिए।"

इस प्रकार राज्य के शासन-प्रबन्ध के अध्यक्ष, अपने-अपने अधिकार-विषयों के क्षेत्र में, मन्त्री लोग ही होते हैं। ये सम्राट् को सलाह देते हैं, जिसके ही प्रति वे उत्तरदायी होते हैं। उनकी नियुक्ति और बर्खास्तगी भी सम्राट् के ही एकमात्र अधिकार में होती है। शासन-सम्बन्धी सारे अधिकार मन्त्रियों को प्राप्त हैं। कानून के अनुसार मन्त्रियों के उत्तरदायित्व का निर्धारण करने का अधिकार सम्राट् को ही है, अतएव मन्त्रित्व पर की जिम्मेदारी के द्वारा व्यवस्थापिका सभाओं का शासन प्रबन्ध में भाग लेना कोई भी कानूनी आधार नहीं रखता। व्यवस्थापिकाओं को, जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, केवल मन्त्रियों से सवाल कर सकने और सार्वजनिक तौर पर बयान तलब करने का अधिकार ही हासिल है। मन्त्रियों की नियुक्ति आदि के सम्बन्ध में अपनी राय भी वे सम्राट् के सामने पेश कर सकती हैं, पर वास्तव में मन्त्रियों और मन्त्रिमण्डल की जिम्मेदारी पर्दे के पीछे से 'जेनरो' द्वारा निर्धारित होती है, जो व्यवस्थापिका सभाओं के बहुमत का समुचित ध्यान रखता है।

तीसरा अध्याय

राष्ट्रीय शासन

जापान के विधान की एक उपधारा के अनुसार "प्रत्येक क़ानून, शाही विशेषाज्ञायें और आर्डिनेन्सों पर यदि उनका सम्बन्ध राज्य के शासन से हो तो मन्त्रियों के हस्ताक्षर अवश्य होने चाहिए।"

इस प्रकार राज्य के शासन-प्रबन्ध के अध्यक्ष, अपने-अपने अधिकार-विषयों के क्षेत्र में, मन्त्री लोग ही होते हैं। वे सम्राट् को सलाह देते हैं, जिसके ही प्रति वे उत्तरदायी होते हैं। उनकी नियुक्ति और बर्ख़ास्तगी भी सम्राट् के ही एकमात्र अधिकार में होती है। शासन-सम्बन्धी सारे अधिकार मन्त्रियों को प्राप्त हैं। क़ानून के अनुसार मन्त्रियों के उत्तरदायित्व का निर्धारण करने का अधिकार सम्राट् को ही है, अतएव मन्त्रित्व पद की ज़िम्मेदारी के द्वारा व्यवस्थापिका सभाओं का शासन प्रबन्ध में भाग लेना कोई भी क़ानूनी आधार नहीं रखता। व्यवस्थापिकाओं को, जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, केवल मन्त्रियों से सवाल कर सकने और सार्वजनिक तौर पर जवाब तलब करने का अधिकार ही हासिल है। मन्त्रियों की नियुक्ति आदि के सम्बन्ध में अपनी राय भी वे सम्राट् के सामने पेश कर सकती हैं, पर वास्तव में मन्त्रियों और मन्त्रिमण्डल की ज़िम्मेदारी पर्दे के पीछे से 'गेनरो' द्वारा निर्धारित होती है, जो व्यवस्थापिका सभाओं के बाहर का अपना स्थान रखता है।

विषयों के विशेष जानकार और अनुभवी व्यक्ति होते हैं। औसतन हर विभाग के मंत्री के मातहत छ: विभागीय ब्यूरो (Departmental Bureau) होते हैं: केवल यातायात-विभाग के मंत्री के नीचे दस ब्यूरो काम करते हैं।

अर्थ-मंत्री, सम्राट् की १८६८ की विशेषाज्ञा (Ordinance) के अनुसार शासन की ओर से हर प्रकार के पब्लिक-फाइनेन्स और पब्लिक करेन्सी का ज़िम्मेदार होता है। भावी बजट के हर विभागों के तख़मीने आर्थिक वर्ष के प्रारम्भ होने के दस महीने पहले अर्थ-मंत्री के पास पहुँच जाने चाहिए। बाद को हर विभाग के प्रतिनिधि अर्थ-मंत्री से मिलकर अपने तख़मीनों के औचित्य समझा सकते हैं और ब्योरे की बातें बता सकते हैं। तख़मीनों को दुहराकर वह संयुक्त रूप से मंत्रिमंडल की बैठक में एक महीने बाद पेश करता है, जहाँ से फिर दुहराया जाकर बजट अर्थ-मंत्री के पास वापस आ जाता है।

इसके बाद व्यवस्थापिकाओं की दोनों सभाओं के दलीय नेताओं से तय करके बजट व्यवस्थापिका में पेश किया जाता है। बजट के चार भाग होते हैं :—

१—जेनरल अकाउन्ट।

२—रेलवे, डाकखाना, एकाधिपत्यवाले व्यापार और उपनिवेशों की आय और व्यय की ये प्रमुख मदें।

३—पृथक तख़मीने।

४—खास मदें।

एक 'बोर्ड ऑफ़ आडिट' के द्वारा सभी सरकारी महकमों के हिसाब-किताब की देख रेख, जाँच-पड़ताल होती है, और अन्तिम स्वीकृति भी इसी से प्राप्त होती है। इस बोर्ड को केवल अर्थ-विभाग के हिसाब देखने का अधिकार नहीं है। बोर्ड में एक

जापान का शासन है; और चूँकि इन संयुक्त शक्तियों का नेतृत्व है अभी बड़े-बड़े निहित स्वार्थों के प्रतिनिधियों के हाथ में, अतः जापान के राजनीतिक इतिहास के लेखकों को यदि यह प्रतीत होता है कि भविष्य में जापान की राजनीति पूरी तरह सामन्त-प्रथा की प्राचीन और परम्परागत धारा में बह चलेगी तो आश्चर्य ही क्या है? किन्तु ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप सारे संसार में फैलती हुई जागरूक श्रेणी भावना का जिन्होंने आँख खोलकर अध्ययन किया है उनके लिए यह समझ सकना अत्यन्त सहल है कि उक्त कृषक सैनिक-संयोग में प्राचीन सामन्त-व्यवस्था लाने के स्थान पर सच्चे जनतंत्र को स्थापित कर सकने का साधन बनने के कहीं अधिक उपकरण वर्तमान हैं; क्योंकि हमें भूलना नहीं होगा कि सैनिक भी अधिकांश किसानों ही के बच्चे हैं। वे सामन्त सरदारों के लाल नहीं हैं जिनकी बलि चीन की रणभूमि में दी जा रही है।

यद्यपि यह सत्य है कि पूँजीवादी-सभ्यता और शासन के गर्भ में पलनेवाली सामाजिक विशृङ्खला की शक्तियाँ ठीक नेतृत्व न पाकर किसी न किसी प्रकार के सैनिक तंत्र को ही जन्म देती हैं, और इस कारण यह कहना सही भी हो सकता है कि उक्त संयोग सामन्तशाही के चोगे में एक नये सैनिक तंत्र को जन्म देगा। इस बात की संभावना स्वीकार करने में इन पंक्तियों के लेखक को कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु क्रान्ति भी वहीं से जन्म लेती है जहाँ से सेनानायक। उन्हीं उपादानों से क्रांति भी बनती है, जिनसे अधिनायकतंत्र। फिर निराशा का कोई विशेष कारण नहीं दीखता, खासकर ऐसी अवस्था में जब कि जापान का राष्ट्रीय वित्त "चीनी मामले" (China Affair) के सामने दिवाले के किनारे आगया है।

जापान का शासन है; और चूँकि इन संयुक्त शक्तियों का नेतृत्व है अभी बड़े-बड़े निहित स्वार्थों के प्रतिनिधियों के हाथ में, अत जापान के राजनीतिक इतिहास के लेखकों को यदि यह प्रतीत होता है कि भविष्य में जापान की राजनीति पूरी तरह सामन्त-प्रथा की प्राचीन और परम्परागत धारा में वह चलेगी तो आश्चर्य ही क्या है ? किन्तु ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप सारे संसार में फैलती हुई जागरूक श्रेणी भावना का जिन्होंने आँख खोलकर अध्ययन किया है उनके लिए यह समझ सकना अत्यन्त सहल है कि उक्त कृषक सैनिक-संयोग में प्राचीन सामन्त-व्यवस्था लाने के स्थान पर सच्चे जनतंत्र को स्थापित कर सकने का साधन बनने के कहीं अधिक उपकरण वर्तमान हैं; क्योंकि हमें भूलना नहीं होगा कि सैनिक भी अधिकांश किसानों ही के बच्चे हैं। वे सामन्त सरदारों के लाल नहीं हैं जिनकी बलि चीन की रणभूमि में दी जा रही है।

यद्यपि यह सत्य है कि पूँजीवादी-सभ्यता और शासन के गर्भ में पलनेवाली सामाजिक विशृङ्खला की शक्तियाँ ठीक नेतृत्व न पाकर किसी न किसी प्रकार के सैनिक तंत्र को ही जन्म देती हैं, और इस कारण यह कहना सही भी हो सकता है, कि उक्त संयोग सामन्तशाही के कोख में एक नये सैनिक तंत्र को जन्म देगा। इस बात की संभावना स्वीकार करने में इन पंक्तियों के लेखक को कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु क्रान्ति भी वहीं से जन्म लेती है जहाँ से सैन्यतंत्र। उन्हीं उपादानों से क्रांति भी बनती है, जिनसे अधिनायकतंत्र। फिर निराशा का कोई विशेष कारण नहीं दीखता खासकर ऐसी अवस्था में जब कि जापान का राष्ट्रीय चित्र "[illegible]" ([illegible]) के [illegible] दिवाले के किनारे आ गया है।

कारण समूचा स्थानीय स्व-शासन का ढाँचा ही बदलकर एकदम नया हो गया। उक्त संशोधित प्रणाली के अनुसार जापान ४५ इलाकों या प्रान्तों में बँटा हुआ है। इन इलाकों की स्थानीय शासन-व्यवस्था दो भागों—शहरी और देहाती हल्कों—में बँटी हुई है। इनमें से टोकियो, कियोतो और ओसाका के इलाके 'फू' यानी शहरी इलाके कहलाते हैं और इनका अपना अलग कानूनी पद (Status) है। शेष ४२ इलाके 'केन' यानी देहाती इलाके कहलाते हैं तथा 'शी' (शहरी जिलों) और 'गुन' (देहाती जिलों) में बँटे हुए हैं। 'गुन' या देहाती जिले भी 'चो' यानी 'कस्बा' और 'सोन' यानी गाँवों में बँटे हुए हैं। किसी इलाके का 'शी' (शहरी जिला) या 'चो' (कस्बा) घोषित किया जाना उसकी जन संख्या पर निर्भर करता है। इसके निर्णय का अधिकार राष्ट्रीय सरकार के गृह-विभाग के मंत्री (Home Minister) को होता है। साधारणतया २५ हजार से अधिक आबादी के प्रत्येक कस्बे 'शी' (शहरी जिले) समझे जाते हैं, जिन्हें स्व-शासन के कुछ विशेष अधिकार प्राप्त हैं। हर इलाके (Prefecture) में एक प्रान्तीय-असेम्बली होती है तथा एक प्रबन्धकारिणी समिति (Executive Council)। इसी प्रकार प्रत्येक देहाती और शहरी जिलों में भी असेम्बलियाँ और प्रबन्धकारिणी समितियाँ होती हैं। गाँवों और कस्बों में, यद्यपि असेम्बलियाँ तो होती हैं, किन्तु प्रबन्धकारिणी समितियाँ नहीं होतीं, जिनका कार्य 'मेयर' अथवा मुखिया के सुपुर्द होता है।

स्थानीय शासन-संस्थाओं के निर्वाचन की प्रणाली सभी इलाकों में लगभग एक-सी ही होती है। जिन इलाकों की आबादी सात लाख से कम है उनकी असेम्बलियों में तीस सदस्य होते हैं। जहाँ की जन-संख्या सात लाख से अधिक है

कारण समूचा स्थानीय स्व-शासन का ढाँचा ही बदलकर एकदम नया हो गया। उक्त संशोधित प्रणाली के अनुसार जापान ४५ इलाकों या प्रान्तों में बँटा हुआ है। इन इलाकों की स्थानीय शासन-व्यवस्था दो भागों—शहरी और देहाती हल्कों—में बँटी गई है। इनमें से टोकियो, कियोतो और ओसाका के इलाके 'फु' यानी शहरी इलाके कहलाते हैं और उनका अपना अलग कानूनी पद (Status) है। शेष ४२ इलाके 'केन' यानी देहाती इलाके कहलाते हैं तथा 'शी' (शहरी जिलों) और 'गुन' (देहाती जिलों) में बँटे हुए हैं। 'गुन' या देहाती जिले भी 'चो' यानी 'कस्बों' और 'मोन' यानी गाँवों में बँटे हुए हैं। किसी इलाके का 'शी' (शहरी जिला) या 'चो' (कस्बा) घोषित किया जाना उसकी जन संख्या पर निर्भर करता है। इसके निर्णय का अधिकार राष्ट्रीय सरकार के गृह-विभाग के मंत्री (Home Minister) को होता है। साधारणतया २५ हजार से अधिक आबादी के प्रत्येक कस्बे 'शी' (शहरी जिले) समझे जाते हैं, जिन्हें स्व-शासन के कुछ विशेष अधिकार प्राप्त हैं। हर इलाके (Prefecture) में एक प्रान्तीय-असेम्बली होती है तथा एक प्रबन्धकारिणी समिति (Executive Council)। इसी प्रकार प्रत्येक देहाती और शहरी जिलों में भी असेम्बलियाँ और प्रबन्धकारिणी समितियाँ होती हैं। गाँवों और कस्बों में, यद्यपि असेम्बलियाँ तो होती हैं; किन्तु प्रबन्धकारिणी समितियाँ नहीं होतीं, जिनका कार्य 'मेयर' अथवा मुखियों के सुपुर्द होता है।

स्थानीय शासन-संस्थाओं के निर्वाचन की प्रणाली सभी इलाकों में लगभग एक-सी ही होती है। जिन इलाकों की आबादी सात लाख से कम है वहाँ असेम्बलियों में तीस सदस्य होते हैं। जहाँ की जनसंख्या सात लाख से अधिक है

पर एकाधिपत्य प्राप्त है, जिसका अर्थ होता है 'स्थानीय स्व-शासन' के ऊपर एक राष्ट्रीय गुटतन्त्र का अस्तित्व।

जापान की स्थानीय सरकारें, असेम्बलियों के रूप में स्थानीय स्व-शासन तथा अधिकारी-तन्त्र (Officialdom) के रूप में हस्तान्तरित केन्द्रीय अधिकारों का एक मिश्रण-सा पेश करती हैं। किन्तु यह प्रत्यक्ष ही है कि इस अन्तर को हमेशा एक विभाजक रेखा खींचकर देख सकना सम्भव नहीं है, क्योंकि कार्यकारिणी हर हालत में बहुत कुछ अधिकारी-तंत्र के रूप में रहेगी ही, और साथ ही अगर वह केन्द्रीय शासन की मुहताज या मुखापेक्षी भी बन जायगी तो प्रत्यक्ष ही एक प्रकार का दुहरा शासन चल पड़ेगा। और वास्तव में इसी द्वैत शासन के कारण जापान में स्थानीय शासन की प्रणाली सफलतापूर्वक कार्यान्वित नहीं हो सकी है।

जापान के स्थानीय स्व-शासन की प्रणाली में ब्रिटेन की तरह अकेन्द्रीकरण (Decentralisation) का सिद्धान्त नहीं के बराबर है। केन्द्रीय शासन से उसका सम्बन्ध जर्मनी की प्राचीन संघ-प्रणाली के ढंग पर क्रमशः हस्तान्तरित करने के आधार पर भी नहीं, वरन् किसी क़दर वह फ्रान्स के केन्द्रीकरण-प्रणाली के अधिक निकट है। गृह मंत्री को स्थानीय स्व शासन का निरीक्षण करने के साथ ही साथ उसमें हस्तक्षेप करने के भी अधिकार प्राप्त हैं। गृह-मंत्री की आज्ञा और स्थानीय असेम्बलियों के निर्णयों में मतभेद होने पर शासन-सम्बन्धी अदालत में अपील की जा सकती है।

न्याय-व्यवस्था

सम्राट् की पुनः प्रतिष्ठा के साथ ही कानून और न्याय की व्यवस्थाओं में भी भारी सुधार हुए। शीघ्र ही दीवानी में कानून और व्यवसाय के कानून बनाये गये। दीवानी का कानून

साधारण अदालतों के मातहत छः प्रकार की अदालतें होती हैं—स्थानीय अदालतें, जिले की अदालतें, अपील की अदालतें (हिन्दुस्तान के जिला-जजों की अदालतों की तरह), और सुप्रीम कोर्ट (जैसे हमारे यहाँ का हाईकोर्ट या नव-स्थापित सघ अदालत)। इनके अतिरिक्त पुलिस-अदालतें और विशेष अदालतें भी होती हैं। १९२२ में एक क़ानून बना था जिसके अनुसार बच्चों की अदालतें भी टोकियो और ओसाका में कायम की गईं। विशेष अदालतों में फ़ौजी अदालतें और कोरिया, फारमोसा तथा क्वान्तुङ प्रान्तों के गवर्नरों की मातहत अदालतें आदि शामिल हैं।

अदालतों और अदालती एजेण्टों, मुख्तारों आदि का निरीक्षण न्याय-मंत्री के जिम्मे है। यद्यपि जजों तथा अदालती एजेण्टों, मुख्तारों आदि की नियुक्ति न्याय-मंत्री के हाथों में होने से राजनैतिक दलबन्दियों का प्रभाव न्याय-विभाग पर पड़ता ही है, फिर भी न्याय-व्यवस्था में साधारणतया ईमानदारी का बर्ता जाना इस कारण विशेष रूप से संभव हो पाता है कि उक्त नियुक्तियाँ और उनसे सम्बन्धित अधिकार जीवन भर के लिए होते हैं।

फौजदारी के मुकदमों में 'हैबियस कॉर्पस' (Habeas Corpus) के अभाव के कारण प्रायः अभियुक्त को अनिश्चित अवस्था में लम्बी मुद्दतों तक जेलों में बन्द रहने का दुर्भाग्य भुगतना पड़ता है। साधारणतया मुकदमों की सुनवाई सार्वजनिक रूप से होती है, जब तक कि किसी विशेष कारण से अदालत किसी खास मुकदमे को बन्द कमरे में सुनने का निर्णय न करे।

शासन-सम्बन्धी हुक्मों की अदालत निम्नलिखित प्रकार के मुकदमे लेती है :–

साधारण अदालतों के मातहत छ: प्रकार की अदालतें होती हैं—स्थानीय अदालतें, जिले की अदालतें, अपील की अदालतें, (हिन्दुस्तान के जिला-जजों की अदालतों की तरह), और सुप्रीम कोर्ट (जैसे हमारे यहाँ का हाईकोर्ट या नवस्थापित संघ अदालत)। इनके अतिरिक्त पुलिस-अदालतें और विशेष अदालतें भी होती हैं। १९२२ में एक कानून बना था जिसके अनुसार बच्चों की अदालतें भी टोकियो और ओसाका में कायम की गईं। विशेष अदालतों में फौजी अदालतें और कोरिया, फारमोसा तथा क्वान्तुङ्ग प्रान्तों के गवर्नरों की मातहत अदालतें आदि शामिल हैं।

अदालतों और अदालती एजेण्टों, मुख्तारों आदि का निरीक्षण न्याय मन्त्री के जिम्मे है। यद्यपि जजों तथा अदालती एजेण्टों, मुख्तारों आदि की नियुक्ति न्याय-मन्त्री के हाथों में होने से राजनैतिक दलबन्दियों का प्रभाव न्याय-विभाग पर पड़ता ही है, फिर भी न्याय-व्यवस्था में साधारणतया ईमानदारी का बर्ता जाना इस कारण विशेष रूप से सम्भव हो पाता है कि उक्त नियुक्तियाँ और उनसे सम्बन्धित अधिकार जीवन भर के लिए होते हैं।

फौजदारी के मुकदमों में 'हैबियस कॉर्पस' (Habeas Corpus) के अभाव के कारण प्रायः अभियुक्तों को अन्याय अवस्था में लम्बा [illegible] रहने का दुर्भाग्य भुगतना पड़ता है। साधारणतया [illegible] सार्वजनिक रूप से होती है, जब तक कि किसी विशेष कारण से अदालत किसी खास मुकदमे को बन्द कमरे में सुनने का निर्णय न करे।

शासन-सम्बन्धी मामलों की अदालत निम्नलिखित प्रकार के मुकदमे [illegible]

परिणाम भी ठीक वैसा ही हुआ। एक खास प्रकार की विचार-तारतम्यता इन कर्मचारियों में प्रत्यक्ष ही देखी जा सकती है। हर नौकरशाही शासन के कर्मचारियों की ही तरह जापान के कर्मचारी भी अपने महकमों के कामों के अच्छे जानकार होते हैं और स्वतंत्र विचार को प्रश्रय देना अनुचित और अवाञ्छनीय समझते हैं। उनकी कर्तव्य-परायणता को केवल इस चेतना से ही प्रेरणा प्राप्त होती है कि वे शाही नौकर हैं।

जापान में 'सिविल-सर्विस' की प्रथा सन १८८५ ई० में प्रारम्भ की गई थी। पहले-पहल १८८७ में 'सिविल-सर्विस' की आम परीक्षा हुई थी, जिसमें शाही युनिवर्सिटी के स्नातक और सरकार-द्वारा मंजूरशुदा स्कूलों के उत्तीर्ण विद्यार्थियों को बैठने से बरी कर दिया गया था। उसके बाद ज्यों-ज्यों शिक्षा की वृद्धि के साथ गैर-सरकारी शिक्षा-संस्थायें बढ़ीं त्यों-त्यों अधिकारियों पर इस बात के लिए अधिकाधिक दबाव पड़ने लगा कि उन संस्थाओं के उत्तीर्ण विद्यार्थी भी सिविल-सर्विस की परीक्षाओं में बैठने से बरी कर दिये जायँ। नतीजा यह हुआ कि १८९३ ई० में एक कानून पास करके सभी सरकारी पदों के आकांक्षियों के लिए सिविल-सर्विस की परीक्षा पास करना अनिवार्य बना दिया गया।

१८९६ में, राजनीतिक दलों की लोक-प्रियता की वृद्धि के साथ, यह राजनीतिक बुद्धिमत्ता समझी गई कि बड़े-बड़े पदों पर होने-वाली नियुक्तियों के लिए सिविल-सर्विस की परीक्षाओं का बन्धन न रक्खा जाय। फलतः ओकुमा और इतागाकी की संयुक्त पार्टी-सरकार ने एक नए पैमाने पर, १८९८ ई० में, उच्च पदों पर दल के समर्थकों को नियुक्त करना प्रारम्भ कर दिया। यह देखकर गुट-बंध पार्टियों का आतंक [illegible] [illegible] और से स्वतन्त्र

शासन-सम्बन्धी मामलों मे नहीं उपस्थित हो सकी है, क्योंकि अधिकाश मंत्री अभी भी वे ही लोग होते है जिन्होंने सिविल-सर्विस के द्वारा ही सार्वजनिक जीवन प्रारंभ किया था।

'शिन्निन' श्रेणी के पदो पर चूँकि नियुक्ति प्रत्यक्ष रूप से सम्राट् के द्वारा होती है अतएव उन पर सिविल-सर्विस के कानून नहीं लागू होते; और न यही आवश्यक है कि उन पदो पर कर्मचारियों मे से ही लोग नियुक्त किये जायँ।

'चोकुनिन' श्रेणी के पदो में दो 'ग्रेड' हैं। इस श्रेणी के नौकरो मे स्थायी विभागीय सेक्रेटरी, जज लोग तथा उच्च अदालती एजेण्ट, 'ब्यूरो' के संचालक लोग, प्रान्तीय गवर्नर लोग तथा शिक्षा विभाग के बहुतेरे उच्च पदाधिकारी शामिल होते है।

'सोनिन' श्रेणी की नौकरिया सात ग्रेड मे विभाजित हैं, जिनमें सभी प्रकार के बाक़ी उच्च अधिकारी समझे जा सकते हैं; और 'हंनिन' श्रेणी मे चार ग्रेड होते हैं, जिनमें क्लर्क क़िस्म के सभी कर्मचारी शामिल होते हैं।

तरक्क़ियों आदि के लिए कोई क़ानूनी व्यवस्था नही है, फिर भी कार्यतः 'सर्विस के रेकर्ड' और नौकरी की अवधि का ख़याल रखकर ही तरक़्क़ियां दी जाती हैं। यह बात सैनिक अधिकारियों के लिए नहीं है। उनके लिए निश्चित कानूनी व्यवस्थायें मौजूद हैं।

नौकरियों से अवसर प्राप्त करने के सम्बन्ध में एक कानून अभी हाल (१९२३ ई०) में बना है, जिसके अनुसार पेन्शन की रकम सिविल-सर्विसवालों के लिए आधा वेतन या एक चौथाई से बढ़ाकर एक तिहाई कर दिया गया है; तथा सैनिक कर्मचारियों के लिए तीन प्रतिशत की वृद्धि की गई है। अवसर प्राप्त करने

शासन-सम्बन्धी मामलों में नहीं उपस्थित हो सकी है क्योंकि अधिकांश मंत्री अभी भी वे ही लोग होते हैं जिन्होंने सिविल-सर्विस के द्वारा ही सार्वजनिक जीवन प्रारम्भ किया था।

'शिन्निन' श्रेणी के पदों पर चूँकि नियुक्ति प्रत्यक्ष रूप से सम्राट् के द्वारा होती है अतएव उन पर सिविल सर्विस के क़ानून नहीं लागू होते; और न यही आवश्यक है कि उन पदों पर कर्मचारियों में से ही लोग नियुक्त किये जायँ।

'चोकुनिन' श्रेणी के पदों में दो 'ग्रेड' हैं। इस श्रेणी के नौकरों में स्थायी विभागीय सेक्रेटरी, जज लोग तथा उच्च अदालती एजेण्ट, 'ब्यूरो' के संचालक लोग, प्रान्तीय गवर्नर लोग तथा शिक्षा विभाग के बहुतेरे उच्च पदाधिकारी शामिल होते हैं।

'सोनिन' श्रेणी की नौकरियाँ सात ग्रेड में विभाजित हैं, जिनमें सभी प्रकार के बाक़ी उच्च अधिकारी समझे जा सकते हैं; और 'हैनिन' श्रेणी में चार ग्रेड होते हैं, जिनमें क्लर्क क़िस्म के सभी कर्मचारी शामिल होते हैं।

तरक्क़ियों आदि के लिए कोई क़ानूनी व्यवस्था नहीं है, फिर भी कार्यतः 'सर्विस के रेकर्ड' और नौकरी की अवधि का ख़याल रखकर ही तरक्क़ियाँ दी जाती हैं। यह बात सैनिक अधिकारियों के लिए नहीं है। उनके लिए निश्चित क़ानूनी व्यवस्थायें मौजूद हैं।

नौकरियों से अवसर प्राप्त करने के सम्बन्ध में एक क़ानून पेन्शन लॉ (१९२३ ई०) में बना है, जिसके अनुसार पेन्शन की रक़म सिविल सर्विसवालों के लिए अन्तिम वेतन का एक चौथाई से घटाकर एक तिहाई कर दिया गया है; तथा सैनिक कर्मचारियों के लिए तीन प्रतिशत की वृद्धि की गई है। अवसर प्राप्त करने

गये हैं। (१) काम करने की अयोग्यता, (२) स्टॉफ की बहु-संख्यकता तथा (३) पद का तोड़ दिया जाना। पिछले दोनों कारण इतने सर्वव्यापी हैं कि उनका उपयोग मनमाने ढग पर बड़ी आसानी से किया जा सकता है। फलस्वरूप गृह-मन्त्री के ऑफिस में नियमित रूप से सदा ही 'पुनः संगठन' का कार्य चला करता है, जिसके नाम पर कर्मचारियों के एक पर एक दल ऑफिस में आते और उससे बर्खास्त होते रहते हैं।

यह जान लेना अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है कि जापान की व्यवस्था के सामाजिक आधार का आलोचक बिना किसी अपवाद के विद्रोही या देश-द्रोही समझा जाता है। आधे दिल से स्थापित की गई जनतन्त्रात्मक प्रणाली भी इतनी अपर्याप्त और अपूर्ण है कि उसका भी कोई प्रभाव इस बात पर नहीं पड़ सका है। असल बात यह है कि जहाँ पश्चिमीय देशों में पूँजीवादी व्यवस्था, सच्चे अर्थ में, सामन्त-युग की व्यवस्था को भंग करके उसकी जगह स्थापित हुई, वहाँ जापान में उसका क्रम कुछ भिन्न रहा, यद्यपि यह ऊपर से देखने पर प्रकट नहीं होता। किन्तु हर राजनीति का विद्यार्थी यह जानता है कि जापान में सामन्त-व्यवस्था के ऊपर पूँजीवादी-व्यवस्था को बलात् लादा गया। तात्पर्य यह कि पूँजीवादी-व्यवस्था जापान में एक ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में न आकर बलात्कारी तौर पर लाई गई। फल यह हुआ कि जिस प्रकार योरप में परिवर्तन की उक्त ऐतिहासिक प्रक्रिया ने व्यक्तिवादियों का एक ऐसा दल पैदा किया जो व्यक्ति की स्वतन्त्रता समानता आदि के अर्थों में सोचने-विचारने की ओर प्रवृत्त रहा, उस तरह जापान में नहीं हो सका। अतएव स्वभावतः व्यक्तिवादी दृष्टिकोण उत्पन्न हुआ; और यहाँ दृष्टिकोण जनतन्त्र की स्थापना और उसे दृढ़ करने में असमर्थ रहा। इसी कारण

चौथा अध्याय

आर्थिक विकास

तोकूगावा के शासन-काल के अन्तिम दिनो में ही स्थानीय और केन्द्रीय दोनों ही सरकारें पश्चिमी देशों के ढङ्ग पर व्यवसायों के संगठन में लग गई थीं। यह नीति विदेशियों के जापान-प्रवेश पर से पाबन्दी उठ जाने के बाद से और भी जोरों पर चल निकली। न केवल इतना ही बल्कि १८६८ में सम्राट् की पुनः प्रतिष्ठा होने के बाद भी यही नीति बर्ती जाती रही, क्योंकि जापान के नेता यह अनुभव कर चुके थे कि जब तक जापान में पश्चिम की भाँति यान्त्रिक उन्नति न कर ली जायगी तब तक महत्त्वाकांक्षी योरपीय व्यापारियों की ओर से जापान की स्वतन्त्रता पर हमेशा खतरा बना रहेगा। और तब से लगातार जापान के जागरूक लोगों और जापानी सरकार का नारा रहा है देश का व्यवसायीकरण। स्वभावतः राज्य को इन कार्य में अग्रणी भाग लेना पड़ा; क्योंकि यद्यपि देश में पहले से कुछ व्यवसायी-परिवार मौजूद थे, जिन्हें बड़े पैमाने पर तिजारत करने का पर्याप्त अनुभव था, फिर भी आधुनिक व्यावसायिक और आर्थिक प्रणालियाँ उन्हें ज्ञात नहीं थीं। अतएव उक्त व्यवसायी परिवारों को भी इस बात की हिदायत की गई कि वे राज्य के नेतृत्व में ही अपने व्याव-सायिक कार्यों को सम्पादित करें। किन्तु अधिकांश नये व्याव-सायिक कार्यों का श्रीगणेश करने का श्रेय राज्य को प्राप्त होने पर भी यह समझना गलत होगा कि सारे व्यवसायों का स्वामित्व अथवा स्थायी प्रबन्ध राज्य के हाथों में था। ज्यों ही एक नया

चौथा अध्याय

आर्थिक विकास

तोकूगावा के शासन-काल के अन्तिम दिनो में ही स्थानीय और केन्द्रीय दोनों ही सरकारें पश्चिमी देशों के ढङ्ग पर व्यवसायो के संगठन में लग गई थीं। यह नीति विदेशियों के जापान-प्रवेश पर से पाबन्दी उठ जाने के बाद से और भी जोरो पर चल निकली। न केवल इतना ही बल्कि १८६८ में सम्राट् की पुनः प्रतिष्ठा होने के बाद भी यही नीति बर्ती जाती रही, क्योंकि जापान के नेता यह अनुभव कर चुके थे कि जब तक जापान में पश्चिम की भाँति यान्त्रिक उन्नति न कर ली जायगी तब तक महत्त्वाकांक्षी योरपीय व्यापारियों की ओर से जापान की स्वतंत्रता पर हमेशा खतरा बना रहेगा। और तब से लगातार जापान के जागरूक लोगों और जापानी सरकार का नारा रहा है देश का व्यवसायीकरण। स्वभावतः राज्य को इस कार्य में अगणी भाग लेना पड़ा; क्योंकि यद्यपि देश में पहले से कुछ व्यवसायी-परिवार मौजूद थे, जिन्हें बड़े पैमाने पर तिजारत करने का पर्याप्त अनुभव था, फिर भी आधुनिक व्यावसायिक और आर्थिक प्रणालियाँ उन्हें ज्ञात नहीं थीं। अतएव उक्त व्यवसायी परिवारों को भी इस बात की हिदायत की गई कि वे राज्य के नेतृत्व में ही अपने व्याव-सायिक कार्यों को सम्पादित करें। किन्तु अधिकांश नये व्याव-सायिक कार्यों का श्रीगणेश करने का श्रेय राज्य को प्राप्त होने पर भी यह समझना गलत होगा कि सारे व्यवसायों का स्वामित्व अथवा स्थायी अंकुश राज्य के हाथों में था। ज्यों ही कुछ नया

व्यावसायिक देश से बहुत नीचा और घटकर है। इस कारण मजदूरी इतनी कम देनी पड़ती है कि अन्य व्यावसायिक देशों की होड़ मे उसे लागत के अर्थ मे काफी सुविधा प्राप्त है। जनता की मानसिक अवस्था का जहाँ तक सवाल है वहाँ तक सामन्त-शाही के सख्त पंजों से छूटकर किसी हद तक स्वाधीनता और नागरिक अधिकार प्राप्त कर अर्द्ध-वैधानिक नौकरशाही सम्राट्-तन्त्र में उन्हें बहुत बड़ी-बड़ी आशायें दृष्टिगोचर होने लगीं। अपनी योग्यता और परिश्रम के द्वारा ऊँचे से-ऊँचा पद प्राप्त कर सकने का मार्ग खुला हुआ देखकर सामन्तों के श्रेणी-अत्याचार के शिकार नवयुवक लक्षाधीश होने के स्वप्न देखने लगे। इन मानसिक अवस्थाओ ने व्यवसाय के क्षेत्र में दो विचित्र प्रवृत्तियो को जन्म दिया। एक तो छोटी पूँजी से अपने निजी व्यवसाय खड़ा करने की इच्छा महत्त्वाकांक्षी लोगों में जाग्रत हो आई और दूसरी ओर सामन्त-युग की आज्ञा-कारिता की रूढ़ि-गत भावना ने श्रमजीवियों के संगठन के विकास का मार्ग अवरुद्ध कर दिया। जापान के मजदूरों की कार्य-कुशलता संसार के सभी व्यवसायी मानते हैं। कहा जाता है कि अन्य देश के मजदूर जो काम दो साल की ट्रेनिंग और शिक्षा-द्वारा सीख सकते हैं, जापान के मजदूर वही केवल दो महीने में सीख लेते हैं। यही कारण है कि जापानी मजदूरों की औसत उम्र केवल ३० साल है। सूती और रेशमी कपड़े माल के व्यवसायों में मजदूरिनों की औसत उम्र केवल २० साल है, मगर उनकी कार्यकुशलता चरम सीमा को पहुँची हुई है।

उपादानों के उक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि जापान के विकास में सहायक है यहाँ की जनता और उसकी [illegible] तथा बाधक हैं प्राकृतिक साधन और भौतिक उपकरणों का अभाव।

आर्थिक उद्देश्य सामने रखकर उसकी पूर्ति के लिए निजी उद्योगों को यथाशक्ति सहायता पहुँचाना। दूसरे शब्दो मे इस बात को यों समझा जा सकता है कि राज्य का उद्देश्य था एक ऐसी स्थिति पैदा कर देना जिससे महत्त्वाकांक्षी औद्योगिक लोग देश के आर्थिक साधनो को एक वांछनीय ढग पर सचालित और संगठित करने की ओर प्रवृत्त हो।

किन्तु यह एक विकट समस्या थी। जापान एक ऐसा देश था जिसने अब तक अपने साधनो का उपयोग अपनी दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए ही किया था। अतएव स्वभावत: उसे अपनी आर्थिक क्रियाशीलता को जरूरत का माल पैदा करने से हटाकर व्यापारिक अथवा पूँजी आकर्षित करनेवाले माल बनाने में नियोजित करना पडा, जिसके लिए उसे कई अवसरोचित उपायो का अवलम्बन करना पड़ा। साधारण जनता पर नये टैक्स लगाकर उनसे प्राप्त होनेवाले धन को नये व्यवसायो में लगाया गया अथवा ऐसे व्यवसायों को सहायतार्थ दिया गया जिन्हें प्रोत्साहन देने के योग्य समझा गया। इतना ही नहीं, राज्य ने उक्त ढग से उपयोग में लाने के लिए अपनी साख पर देश तथा विदेश से ऋण लेने की भी व्यवस्था की। गत महायुद्ध के पहले की एक दशाब्दी में ये तरीके अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक और प्रभावशाली ढंग से काम मे लाये गये। १८९५ के चीनी-युद्ध तथा १९०५ के रूसी-युद्ध की सफलताओं ने जापान के इस काम को और आसान बना दिया, क्योंकि राष्ट्रीय सम्मान की वृद्धि के साथ ही साथ उसे एक आर्थिक स्वाधीनता प्राप्त हो गई, जिसके कारण विदेशों से सस्ती दर पर ऋण मिलना सम्भव हो गया।

इस प्रकार इस शताब्दी के प्रथम चरण मे जापान के

में कार्य करने लगे। सूती कपड़ों के व्यवसाय में इस प्रकार अबाध रूप से सम्पत्ति इकट्ठा होने के कारण उसमें उच्चतम और अत्यन्त सुचारु सहयोगात्मक संगठन (Rationalisation) पैदा हो गया है। सच तो यह है कि जापान का अन्य कोई भी व्यवसाय इससे बढ़कर सुसञ्चालित और संगठन की दृष्टि से सहयोगात्मक (Rationalised) नहीं है। इतना ही क्यों, संसार की कोई व्यावसायिक प्रणाली इतनी ठोस नहीं है, जितनी जापान के सूती कपड़े के व्यवसाय की प्रणाली।

ऊपर ही हम कह चुके हैं कि जापान के अन्य बड़े व्यवसाय इतने भाग्यशाली नहीं हैं। लोहा, इस्पात, खानों और धातुओं के व्यवसाय इतने अच्छी तरह सङ्गठित नहीं हैं। लोहे और इस्पात के व्यवसाय अधिकांशतः जापान के सरकारी व्यवसाय हैं और सच तो यह है कि जिस यान्त्रिक कुशलता की आवश्यकता इन व्यवसायों में थी उसको देखते हुए अन्य देशों की प्रतियोगिता में ठहर सकने के लिए इन व्यवसायों का सरकार के हाथों में होना अनिवार्य-सा था। दूसरी बात यह है कि चूँकि लोहा और इस्पात देश के व्यवसायीकरण के सर्वप्रधान आधुनिक उपकरण हैं अतएव काफी सस्ते दामों पर बिक्री के लिए उनका बाजार में आना आवश्यक था, जो तभी सम्भव था जब सीधे सरकार के हाथों में इनके व्यवसायों का सञ्चालन और नियन्त्रण हो। गत महायुद्ध के दिनों में लोहे और इस्पात की माँग संसार में बहुत बढ़ी; जिससे लाभ उठाकर जापान के व्यवसायियों ने कितनी ही नई और निजी कम्पनियाँ खोल डालीं। किन्तु युद्ध के समाप्त होते ही ऐसी बुरी दशा का सामना करना पड़ा कि जापान का यह व्यवसाय मुश्किल से नष्ट होने से बचाया जा सका। १९२३ ई० में सरकार ने अपने कारखानों में लोहे

संसार की जस्ते की सम्पूर्ण उपज का केवल ३ प्रतिशत जापान पैदा करता है। यहाँ के जस्ते की खानों के व्यवसाय को गत महायुद्ध के पूर्व संसार में होनेवाली अत्यधिक उपज के कारण बहुत नुकसान उठाना पड़ा था, यद्यपि उक्त व्यवसाय में सहयोगात्मक संगठन-प्रणाली का उपयोग करके उसे उन्नत बनाने की इधर सतत चेष्टायें की गई हैं। बड़ी खानों के मालिक छोटी खानों का लगभग सारा प्रबन्ध व्यावसायिक चातुर्य-द्वारा अपने हाथों में रखते आये हैं। और इस तरह छोटी खानें बड़ी खानों के व्यवसायियों की सुविधा-असुविधा के अनुसार चलते और बन्द होते रहते हैं।

जहाज-निर्माण जापान का सबसे बड़ा इञ्जीनियरिंग और मैन्यूफैक्चरिंग उद्योग है। १८९६ ई० के "जहाज निर्माण प्रोत्साहन कानून" के अनुसार निरन्तर सरकारी सहायता इसे प्राप्त होती रही है। यह व्यवसाय समुद्री युद्ध और समुद्री वाणिज्य दोनों के लिए सामग्रियाँ तैयार करता है, और गत महायुद्ध के बाद से धीरे-धीरे व्यक्तियों के हाथ से निकलकर इसका प्रबन्ध सरकारी और अर्द्ध-सरकारी हाथों में आ गया है।

कच्चे रेशम को लपेटने का व्यवसाय जापान में एक अर्द्ध-विकसित व्यवसाय है। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, आरम्भिक विकास के दिनों में यह व्यवसाय व्यापारिक पूँजी के नियन्त्रण में बना गया और सारी उपज (Output) [illegible] लोगों के [illegible] ही बाजार में खप जाती थी। ये [illegible] लोग [illegible] पैदा करनेवाले [illegible] थीं। इस तरह [illegible] इस व्यवसाय का [illegible] बन गईं। इस व्यवसाय का सरकार सहायक है [illegible]

डीसेल इञ्जनों के प्रचलन ने कोयले की माँग को बहुत हद तक घटाकर तेल की माँग को ख़ूब बढ़ा दिया है।

कागज़, छापे, सीमेंट और चीनी साफ करने के व्यवसाय आधुनिक मशीनों और वैज्ञानिक प्रबन्ध से सयुक्त होने के साथ ही ख़ूब सुसंगठित हैं।

छोटे और कथित मझोले व्यवसाय जापान मे अनेको प्रकार के हैं; रेशमी गंजी-मोजे, फाउन्टेन-पेन, बिजली के लैम्प, खिलौने और बनाये हुए खाने के सामान (बिस्कुट आदि की तरह की चीज़ें) आदि के व्यवसाय इसी श्रेणी मे शामिल हैं। बेतरह बाधा-विघ्नों के होते हुए भी ये व्यवसाय जापान मे इस कोने से उस कोने तक सारे देश मे फैले हुए हैं। इसके कई कारण हैं। एक तो इस कारण कि बड़ी पूँजी के अभाव मे व्यापार-वाणिज्य से पहले जापान मे व्यवसाय-उद्योग ही पैदा हुए और पनपे, अतएव स्वभावत: वह आखिरी साँस तक लड़े बिना विनष्ट होना नहीं चाहते। हाल मे उन्हें सरकारी सहायता भी प्राप्त होने लगी है। दूसरा कारण, जिसकी ओर हम पहले ही संकेत कर चुके हैं, यह है कि 'स्वतन्त्र-व्यवसाय' का सिद्धान्त नई पीढ़ी के लिए अत्यन्त आकर्षक प्रतीत हुआ, क्योंकि सामन्त-युग की दासता और आर्थिक आश्रित-अवस्था मे जन वर्ग का दम घुट-सा गया था।

यातायात के साधनों से सम्बन्धित व्यवसाय भी जापान के अत्यन्त उन्नत व्यवसायों मे से हैं। लगभग सभी रेलें एवं राज्य के अधिकार मे आ गए हैं और [illegible] पश्चिमी देशों के रेलों से [illegible]। उपनिवेशों की रेलें भी सरकार के हाथों मे [illegible] सम्बन्धित रेलों। अर्द्ध-सरकारी-संगठन [illegible] मे हैं। [illegible] गया है।

जापान का जहाजरानी का व्यवसाय वास्तव में अन्य सभी देशों से अधिक सुव्यवस्थित है। जानकारों का कहना यह है कि पूँजीवादी संगठन की सुचारुता वहाँ अपनी चरम सीमा पर पहुँची हुई है। जहाजरानी के विकास में सबसे महत्त्व-पूर्ण घटना थी १८९३ में जापान-बम्बई सर्विस की स्थापना। यह पहला अवसर था जब कि जापान संसार के समुद्री वाणिज्य की प्रतियोगिता में शामिल हुआ। और पिछले सत्तर वर्षों में ही आज वह संसार की तीसरी समुद्री शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित और सम्मानित है। जहाजरानी के व्यवसाय में लगी हुई सम्पूर्ण पूँजी अत्यधिक है। १९३४ के मूल्यांकन के अनुसार २९ बड़ी जहाजी-कम्पनियों के हिस्सों का मूल्य ३८,५४,७०,८५० येन कूता गया था।

जहाज बनाने का व्यवसाय आश्चर्यजनक रूप से उन्नत हुआ है। १८९६ में जहाँ जापान के जहाज निर्माण में जहाजों की कुल संख्या २६ थी, जिनका कुल वजन केवल ७,८४५ टन था, वहाँ १९१९ में बढ़कर ६,११,८८८ हो गया। जापान की जहाजी कम्पनियाँ आजकल १०,००० टन तक के व्यापारी जहाज बना सकती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता का सामना करने के लिए इधर कई जहाजी कम्पनियाँ सम्मिलित भी कर दी गई हैं।

वैदेशिक व्यापार

जापान की प्रारम्भिक समस्याओं में एक प्रमुख समस्या उसके वैदेशिक व्यापार की भी थी। अपनी आर्थिक नीति को सफलतापूर्वक चला ले जाने के लिए 'मैजी शासन' के शासकों को वैदेशिक पूंजी (Equipment) की अत्यन्त आवश्यकता थी। इसके अतिरिक्त, चूँकि देश में कच्चे माल की कमी थी अतः

और उसकी आय (Receipts) अत्यन्त अस्थिर थी जिससे होनेवाली आर्थिक अव्यवस्था प्राय: बहुत भयंकर हो उठती थी।

विनिमय की इन कठिनाइयों को जापान ने १८९७ में स्वर्णमान की स्थापना करके जीतने की कोशिश की और उसके द्वारा वैदेशिक बैलेन्स काफी परिमाण में जमा करना शुरू कर दिया गया। १९१५ ई० के उत्तरार्ध से जापानी जहाजी सर्विस और जापानी माल की माँग, गत महायुद्ध के कारण, अचानक ही खूब बढ़ गई। फलत: व्यावसायिक उन्नति का क्रम भी खूब तेज हो उठा और तैयार माल का निर्यात अत्यधिक बढ़ गया। अर्थशास्त्रियों ने हिसाब लगाकर बताया है कि सन् १९१३ और १८ के बीच तैयार माल का निर्यात ४० प्रतिशत बढ़ गया था जो मूल्य में तिगुनी वृद्धि का कारण बना। इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्र के पंडितों ने जिसे "अदृश्य व्यापार" कहा है उस तरह के जहाजी व्यवसाय आदि से आनेवाली आय भी इतनी बढ़ी कि युद्ध के चार वर्षों में जापान एक ऋणी राष्ट्र से महाजन राष्ट्र बन गया।

इस प्रकार निर्यात-व्यापार से होनेवाली भारी बचत (Surplus) को देखते हुए समझा जा सकता है कि जापान में अन्य देशों से सोना खिंच आने लगा होगा, किन्तु युद्ध के समय स्वर्ण-निर्यात पर लगाये गये नियंत्रण के कारण ऐसा नहीं हो सका। फिर भी जापान का स्वर्ण-संचय यथेष्ट बढ़ गया।

वैदेशिक व्यापार का अधिकांश भाग बड़ी-बड़ी कम्पनियों के द्वारा होता है। 'मित्सुई ट्रेडिंग कम्पनी' अपने विशाल और व्यापक व्यापार-प्रणाली के लिए संसार भर में प्रसिद्ध है। यही कम्पनी १,१०,८०,००,००० येन से ऊपर का व्यापार हर साल करती है। जापान का वैदेशिक व्यापार [illegible]

आयात

वस्तु	मूल्य निकटतम लाख येन में	कुल योगफल का प्रतिशत
(खाने के सामान)		
चावल	११·५	
गेहूँ	४४	
बीन्स	५०	
चीनी	१३	
फुटकर	५५	
कुल	१७३·५	९
(कच्चा माल)		
तेलहन	२३	
कोयला	३७	
कच्चा रबर	३०	
एमोनिया सल्फेट	९	
रुई	६०५	
खली	४१	
ऊन	१६४	
बल्लियाँ	४८·५	
अन्य चीज़ें	२३२	
कुल	११८९·५	६२
(कच्चे माल के सामान)		
लुगदियाँ (कागज आदि की)	२७	
ऊनी धागे	३	
ढला हुआ लोहा	२५	
दूसरे प्रकार के लोहे	११६	
सीसा	१२	
जस्ता	७	
अन्य चीज़ें	१२३	
कुल	३३८	१७

आयात

वस्तु	मूल्य निकटतम लाख येन में	कुल योगफल का प्रतिशत
(खाने के सामान)		
चावल	११·५	
गेहूँ	४४	
बीन्स	५०	
चीनी	१३	
फुटकर	५५	
कुल	१७३·५	६
(कच्चा माल)		
तेलहन	२३	
कोयला	३७	
कच्चा रबर	३०	
एमोनिया सलफेट	९	
रुई	६८५	
खली	४१	
ऊन	१५९	
धत्तियाँ	४०·५	
अन्य चीजें	२३२	
कुल	११८१·५	६२
(कच्चे माल के सामान)		
लुगदियाँ (कागज आदि की)	२.५	
ऊनी धागे	३	
ढला हुआ लोहा	२५	
दूसरे प्रकार के लोहे	११२	
शीशा	१०	
जस्ता	७	
अन्य चीजें	१०३	
कुल	१६८	१७

वस्तु	मूल्य निकटतम लाख येन में	कुल यो… का प्र…
(कच्चे माल के सामान)		
वनस्पति-तेल	८	
कच्चा रेशम	३९१	
लोहा	३५	
सूती धागा	१६	
घटा हुआ सूत, रेशम आदि का धागा	७	
	८३	
कुल	५४०	२९.५
(तैयार माल)		
सूती सामान	३८२	
रेशमी सामान	१५१	
ऊनी गंजी-मोजे	३१	
ग्लास	१५	
मशीनें	२६	
बर्तन	३६	
कागज़	१८	
अन्य चीज़ें	३८२	
कुल	१,०३२	५५.२
विभिन्न चीज़ें	३०	
पुनर्निर्यात	२६	
सम्पूर्ण योगफल	१,८९६	

(ऊपर के सर्वांक १९३३ के हैं)

कृषि

…र्थिक अवस्था का विवेचन करते समय
… …खेला नहीं की जा सकती। …

थोक-फ़रोशी और फाटकेबाज़ चावल-विनिमय (Rice exchange) नामक संस्था के द्वारा ही निर्धारित और नियन्त्रित होता है। परिवार के परिवार खेतों में सुबह से शाम तक और रात में देर तक खेतों में काम करते हैं फिर भी मुश्किल से उन्हें पेट भरने लायक़ ही भोजन नसीब हो पाता है। सारा मुनाफ़ा, बनावटी खाद बेचनेवाली कम्पनियों की जेब में चला जाता है। कृषि-हितों के दूसरे शोषक हैं—साहूकार और महाजन। ७० प्रतिशत से अधिक किसान ऋण लेकर अपने खेतों में लगाते हैं और किसी तरह जीवन बिताते हैं। उनकी उपज का एक बहुत बड़ा भाग सूद के रूप में पूँजीपतियों के जेब में चला जाता है। किसानों की औसत शिक्षा प्राइमरी स्कूलों के स्टैन्डर्ड की है। शरीर से स्वस्थ सभी युवकों के लिए अन्ध-आज्ञाकारिता की सैनिक शिक्षा अनिवार्य होती है। किसानों के लिए सैनिक नेताशाही ख़ास तरह के समाचार-पत्र भी निकालती है। हाल में रेडियो-द्वारा शिक्षा देने की व्यवस्था भी की गई है, जिस पर सेन्सर का कठोर नियन्त्रण है। सबका अर्थ यह कि कोई भी नियमित और जन-प्रिय शिक्षा की व्यवस्था जापानी किसानों के लिए नहीं है। फलतः उनके लिए राजनीति अथवा आधुनिक सामाजिक स्थिति का समझना भी असम्भव-सा है। किसान अधिकतर राजनीतिक दलबन्दियों के हाथ में खिलौने भर हैं। उन्हें उनकी ग़रीबी के कारण आसानी से रिश्वत के बदले इधर से उधर भी किया जा सकता है।

किसानों में मुक़दमेबाज़ी और दंगे (जिन्हें जापान की भाषा में 'चावल के दंगे' या Rice Riots कहते हैं) बहुतायत से होते रहते हैं। किसान परिवारों की औसत आमदनी रोज़ तीन शिलिंग मात्र है। जापान की कृषि-व्यवस्था एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण समस्या

थोक-फरोशों और फाटकेबाज चावल-विनिमय (Rice exchange) नामक सस्था के द्वारा ही निर्धारित और नियन्त्रित होता है। परिवार के परिवार खेतों में सुबह से शाम तक और रात में देर तक खेतों में काम करते हैं फिर भी मुश्किल से उन्हे पेट भरने लायक ही भोजन नसीब हो पाता है। सारा मुनाफा बनावटी खाद बेचनेवाली कम्पनियों की जेब में चला जाता है। कृषि-हितों के दूसरे शोषक हैं—साहूकार और महाजन। ७० प्रतिशत से अधिक किसान ऋण लेकर अपने खेतो में लगाते हैं और किसी तरह जीवन बिताते हैं। उनकी उपज का एक बहुत बड़ा भाग सूद के रूप में पूँजीपतियों के जेब में चला जाता है। किसानों की औसत शिक्षा प्राइमरी स्कूलों के स्टैण्डर्ड की है। शरीर से स्वस्थ सभी युवकों के लिए अन्ध-आज्ञाकारिता की सैनिक शिक्षा अनिवार्य होती है। किसानों के लिए सैनिक नेताशाही खास तरह के समाचार-पत्र भी निकालती है। हाल में रेडियो-द्वारा शिक्षा देने की व्यवस्था भी की गई है, जिस पर सेन्सर का कठोर नियन्त्रण है। सबका अर्थ यह कि कोई भी नियमित और जन-प्रिय शिक्षा की व्यवस्था जापानी किसानों के लिए नहीं है। फलतः उनके लिए राजनीति अथवा आधुनिक सामाजिक स्थिति का समझना भी असम्भव-सा है। किसान अधिकतर राजनीतिक दलबन्दियों के हाथ के खिलौने भर हैं। उन्हें उनकी गरीबी के कारण आसानी से [illegible] के जरिये इधर से उधर भी किया जा सकता है।

किसानों में मुकदमेबाजी और दंगे (जिन्हें, जापान की भाषा में 'चावल के दंगे' या Rice Riots कहते हैं) जापान में होते रहते हैं। किसान परिवारों की औसत आमदनी [illegible] येन वार्षिक मात्र है। जापान की कृषि-व्यवस्था एक प्रकार से ही [illegible] समस्या

इसके अतिरिक्त गत महायुद्ध के ठीक बीच में 'जापान इन्डस्ट्रियल क्लब' की स्थापना हुई थी जिसमें सभी व्यवसायी, व्यापारी, महाजन और साहूकार शामिल हैं। वास्तव में उक्त क्लब ही आज जापानी पूँजीवाद का केन्द्र है। इसके अतिरिक्त एक संस्था 'जापान इकॉनामिक फेडरेशन' नाम की भी है, जिसमें भी उक्त प्रकार के ही लोग हैं। इस संस्था का काम है—विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय साधनों से अन्तर्राष्ट्रीय अर्थनीति में सहकारिता का सम्बन्ध कायम रखने की सतत चेष्टा करना।

में यह भी बड़े ही साहस के साथ घोषित किया गया था कि सेना-वाद जनतंत्र के सिद्धान्तों का बिलकुल विरोधी विचार है इस कारण यथाशीघ्र सेना की संस्था भंग कर दी जानी चाहिए।

इतने उग्र विचारों के प्रदर्शन को देखते हुए भी वास्तविकता यह थी कि उन विचारों का न तो जन-साधारण पर ही कोई प्रभाव था और न इनका कोई असली आधार ही था। फिर भी गृह-मंत्री को ये विचार असह्य हो उठे; और घोषणा-पत्र के प्रकाशित होते ही सरकारी आज्ञा-द्वारा उक्त पार्टी भंग कर दी गई। उक्त पार्टी और उसका घोषणा पत्र संपत्तिजीवी नौकर-शाही के प्रति एक बौद्धिक विद्रोह की प्रचंड अभिव्यक्ति थी। इसके बाद ही 'जापान-जन-संघ' (Japanese People's Party) बनाने की कोशिश की गई; किन्तु सरकार ने उसे भी कुचल डाला। इतने दमन के बावजूद भी जो विचार बुद्धिजीवियों के एक दल में पैदा हो चुके थे वे आसानी से समाप्त होनेवाले नहीं थे। 'पीपुल्स निउज पेपर' नामक एक समाचार-पत्र इस नवीन विचारधारा का केन्द्र बना और उसके जरिये प्रचार का कार्य जोरों के साथ होने लगा। यहाँ यह बतला देना आवश्यक नहीं होगा कि उक्त पत्र समाजवादी सिद्धान्तों का ही पोषक और प्रचारक न होकर प्रत्येक वामपक्षीय (Leftist) राजनीतिक विचारों को प्रश्रय देनेवाला पत्र था। उसने साम्यवादी (Communistic) विचारधारा का भी जोरदार प्रचार शुरू किया।

१९०४ ई० के प्रथम भाग में जापान के प्रसिद्ध समाजवादी [illegible] [illegible] [illegible] भाग लेने के लिए भेजे गये। यहाँ [illegible] मार्क्सवादी नेता [illegible] लेनिन से उनकी भेंट हुई। [illegible] [illegible] कांग्रेस में [illegible] समाजवादियों ने इस

स्थापना हुई। दूसरे साल के भीतर ही उसकी सदस्य संख्या २७,००० तक पहुँच गई।

किन्तु नेतृत्व की अनुपयुक्तता और कमजोरी के कारण उक्त संगठन अपने वास्तविक उद्देश्य की ओर अग्रसर नहीं हो सका। 'यूएकाई' के पाँचवें वर्ष की एक बैठक में ये विचार व्यक्त किये गये थे कि "जापान का यह वर्तमान श्रमजीवी-आन्दोलन वास्तव में मजदूरों का आन्दोलन नहीं है, वह तो बुद्धिजीवियों और अध्यापकों का आन्दोलन है।" और वास्तव में यह मध्यवर्ग का बुद्धिजीवी नेतृत्व ही उक्त संस्था के समाजवादी विकास में बाधक बना। 'यूएकाई', विचारधारा (Idealogies) के विश्लेषण और उन पर वादविवाद करने का, एक क्लब जैसा हो गया। यदि वास्तव में नेतृत्व निम्न मध्यवर्ग के श्रेणी-च्युत बुद्धिजीवियों के हाथ में भी होता तो उक्त परिस्थितियों में जापान के मजदूर-आन्दोलन को असाधारण लाभ हुआ होता। ट्रेड यूनियन आन्दोलन के प्रारम्भ में बुद्धिजीवियों और धनिकों का सहयोग एक अनिवार्य आवश्यकता हुआ करती है; किन्तु जापान के बुद्धिजीवी नेतृत्व में व्यक्तिगत प्रतियोगिता अपनी सारी दुर्बलताओं के साथ घुसी हुई थी, जिसका परिणाम आन्दोलन के लिए अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हुआ। साथ ही जिस प्रकार जापान में, पूँजीवादी व्यवस्था एक विकास क्रम के रूप में न आकर एक विस्फोट की तरह आई, उसी तरह समाजवादी विचारधारा भी एक अव्यवस्थित और ऊल-जलूल हालत में वहाँ पैदा हुई। किन्तु जहाँ पूँजीवाद ने राज्य के सहारे और उसकी छत्रछाया में, दम पर पहले [illegible] ही संगठित और सुव्यवस्थित रूप लिया वहाँ समाजवादी विचारधारा प्रारम्भ से ही [illegible] और शासन की वक्र-दृष्टि से [illegible] नहीं बच सकी।

इस कोने से उस कोने तक हड़तालों की धूम मच गई थी। इन हड़तालों में सबसे प्रसिद्ध है—कोबे बन्दरगाह के मित्सुबिशी और कावासाकी जहाजी घाटों के मजदूरों की हड़ताल। इस हड़ताल में ३५,००० मजदूर शामिल थे और वह ४५ दिनों तक शान के साथ चली थी। उक्त हड़तालों का उद्देश्य, सरकार और मिल-मालिकों से ट्रेड यूनियनों के लिए मान्यता (Recognition), संयुक्त-समझौते के सिद्धान्त की स्वीकृति और ट्रेड यूनियनों में मजदूरों के शामिल होने की आजादी प्राप्त करना ही थी।

१९२० ई० में 'युएकाई' के वार्षिक सम्मेलन में उसका नाम बदलकर 'जापान मजदूर-संघ' (Japan Fedration of Labour) कर दिया गया। इस सम्मेलन में मजदूर-आन्दोलन की एकता तो अवश्य पूरी तरह प्रदर्शित हुई; किन्तु नेताओं के सैद्धान्तिक मतभेद भी कुछ कम नहीं दृष्टिगोचर हुए। पहले कुछ दिनों तक तो ये मतभेद भी एकदम अस्पष्ट आधारों पर चलते रहे; पर अन्ततः १९२२ ई० में आकर उनकी दो स्पष्ट धारायें हो गईं, समाजवादी (Socialistic) और समष्टिवादी (Communistic); और इसके बाद 'मजदूर-संघ' में बार-बार दल-गत विच्छेद (Split) पैदा हुए। १९२४ ई० में कुछ नेताओं ने इस बात पर जोर देना आरम्भ किया कि किसी राजनीतिक सिद्धान्त को महत्त्व दिये बिना ही 'जापान-मजदूर-संघ' को केवल ट्रेड यूनियन के सिद्धान्तों पर ही चलाया जाय, किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिल सकी। फलतः इसी बात को लेकर 'मजदूर-संघ' में टूट होने शुरू हो गये। वार्षिक सम्मेलन में पूर्वी जिलों के सभी कम्युनिस्ट नरदलों ने संघ से इस्तीफा दे दिया। [illegible] बाद पश्चिमी जिलों के कम्युनिस्टों ने भी दिया। इसका नतीजा यह था कि समाजवादी [illegible] सुधारवादी दल [illegible]

के बावजूद भी निरन्तर जारी है। कम्युनिस्टों की गुप्त समितियों के द्वारा बराबर पर्चे छपते और बटते रहते हैं। इन गुप्त समितियों के संचालकों और कार्यकर्ताओं की तलाश में बराबर सरकार की सारी मशीन लगी रहती है और अफवाहों तथा बहुत-से विश्वसनीय साधनों-द्वारा प्राप्त विवरणों से समझा जाता है कि कम्युनिस्ट होने के सन्देह पर पकड़े जानेवाले लोगों को भयानक यातनायें भी दी जाती हैं। कहा जाता है कि इन तरीकों से लगभग सभी कम्युनिस्ट नेताओं और कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार करके सजायें दे दी गई हैं। गिरफ्तार और स[illegible] पाये कम्युनिस्टों की संख्या हजारों में है फिर भी यह बात सुरक्षित तौर पर नहीं कही जा सकती कि जापान में कम्युनिस्ट-आन्दोलन का अन्त हो गया है।

१९३३ ई० में यह खबर प्रकाशित की गई थी कि जापानी कम्युनिस्टों के प्रमुख नेता सानो और नाबेयामा ने [illegible] सरकार की जेलों में लम्बी मुद्दतों के लिए स[illegible] अपने राजनीतिक विचार बदल दिये हैं और इस [illegible] सजा की अवधि घटा दी गई है। उनके [illegible] भी प्रकट था कि वे फासिस्टों के राजनीतिक [illegible] लगे हैं। पहले तो यही बात समझ में [illegible] यह बात सच थी तो उन्होंने ऐसा क्यों नहीं [illegible] कहा यह जाता है कि सरकार ने कम्युनिस्टों [illegible] के लिए यह झूठा प्रचार कराया था।

इस तरह [illegible] विचार-धारा के मजदूर-[illegible] [illegible] संगठनों को [illegible] होने में [illegible] की आ[illegible] सरकार [illegible] के कारण वे [illegible] अति शीघ्र [illegible] उन्नति भी कर रहे हैं। [illegible]

इसी कारण जापान के फासिस्टों में कोई हिटलर अथवा मुसो-लिनी नहीं पैदा हुआ।

नीचे के आँकड़ों से पाठकों के सामने ट्रेड यूनियन-आन्दोलन में विभिन्न विचार-धाराओं का प्रभाव प्रकट हो जायगा। निश्चय ही कम्युनिस्टों के गुप्त प्रभाव का पता इससे नहीं चलेगा, जिसे समय स्वयं, सम्भव है निकटभविष्य में ही, प्रकट कर देगा।

ट्रेड यूनियनों के आँकड़े

नाम	विचार-धारा	सदस्य-संख्या
जापान जहाजी यूनियन	समाजवादी जनतंत्र (नाममात्र का समाजवादी)	९६,७६९
जापान जेनरल फेडरेशन-ऑफ लेबर	,,	५१,१६५
नैशनल फेडरेशन ऑफ ट्रेड-यूनियन	,,	४५,३३०
जापानी कनफेडरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन	,,	२५,५३७
व्यापारिक जहाजों के अफसरों का संघ	,,	१३,८४५
जापान के बन्दरगाह-मजदूरों का संघ	,,	११,८२९
राजकीय-व्यवसायों के मजदूरों का जेनरल फेडरेशन	,,	८,४५०
जापानी फेडरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन	,,	६,६९८
टोकियो बिजली कम्पनी का मजदूर-संघ	,,	५,०००
टोकियो गैस-व्यवसाय का ट्रेड यूनियन	,,	१,९८०
लोहा और इस्पात [illegible] कम्पनियों का मजदूर-संघ	,,	१६,०००
	योग	३,३१,७०४

(ये सभी संगठन जापान-ट्रेड यूनियन कांग्रेस में अन्तर्निहित हैं।)

उक्त संख्या जापान के व्यावसायिक मजदूरों की सम्पूर्ण संख्या का केवल ७ १ प्रतिशत है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि जापान के मजदूर कितने असंगठित हैं। उक्त विभिन्न विचारधाराओं को देखकर यह भी समझा जा सकता है कि जो थोड़े मजदूर संगठित हैं भी उनके संगठन का कोई ठोस विचारवादी (Idealogical) आधार नहीं है।

उक्त संख्या जापान के व्यावसायिक मज़दूरों की सम्पूर्ण संख्या का केवल ७ १ प्रतिशत है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि जापान के मजदूर कितने असंगठित हैं। उक्त विभिन्न विचारधाराओ को देखकर यह भी समझा जा सकता है कि जो थोडे मज़दूर संगठित हैं भी उनके संगठन का कोई ठोस विचारवादी (Ideological) आधार नहीं है।

इन सब कुछ के चलते भी जापान के संयुक्त परिवारों का कायम रहना एक योरपीय दर्शक अथवा पाठक के लिए विचित्र और आश्चर्यजनक लग सकता है, क्योंकि जापान की राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्थायें पूरी तरह पूँजीवादी ढाँचे में ढली हुई होने पर भी वहाँ की सामाजिक संस्थायें और धारणायें बहुत कुछ प्राचीन सामन्तवादी परम्पराओं और रिवाजों के ही प्रभाव से अनुप्राणित हैं। चूँकि पूँजीवादी व्यवस्था की मूल चारित्रिकता है उसका वैयक्तिक दृष्टिकोण, अतएव उसकी शक्तियों ने जापान में भी सामाजिक प्रथाओं और विचारों को व्यक्तिवादिता की ओर परिवर्तित करना शुरू अवश्य कर दिया है फिर भी आधुनिक पूँजी-वाद के ५० वर्षों के प्रयत्न के बावजूद भी जापानी समाज की प्रमुख इकाई—परिवार—बहुत कुछ अक्षुण्ण ही बना हुआ है। पूर्वजों की पूजा वहाँ अभी भी प्रचलित है, और वह ऐसे परिवारों में भी उसी तरह होती है जो ईसाई हो गये हैं। हर गर्मी में 'ओ-बोन' नामक एक पर्व मनाया जाता है जिसमें प्रत्येक परिवार एकत्र होकर पूर्वजों की पूजा करता है। ऐसी धारणा बँधी हुई है कि उस दिन पूर्वज लोग स्वर्ग से उतरकर अपने परिवारों के प्रवासस्थानों में आते हैं। इस उत्सव में आधुनिक रहन-सहन के लोग भी शामिल होते हैं।

जापानी पूँजीवाद का सर्वप्रधान गुण रहा है, लेनी-देन भूलकर सम्बन्धियों का एक दूसरे का सहायता करना, यह गुण योरपीय पूँजीवाद में नहीं देखा जा सकता। पितृ-प्रधान परिवारों की प्रथा (जैसा एक सीमित मात्रा में हमारे देश में भी प्रचलित है,) के परिणाम [illegible] रिश्ते पर सभी-सम्बन्धियों के, भरण-पोषण की नैतिक जिम्मेदारी-सी डाल रखती है। फिर भी यह नैतिक जिम्मेदारी आर्थिक [illegible] में सामने

कि परिवार-बन्धन का नैतिक आधार जापानी पूँजीपति अथवा मिल-मालिक को उदार होने और दानशीलता की प्रेरणा देता है, जिसके कारण वहाँ आर्थिक श्रेणियाँ नहीं बन सकी हैं। अर्थ-शास्त्र के साधारण सिद्धान्तों से परिचित व्यक्ति भी यह आसानी से समझ सकता है कि गलाघोंट व्यावसायिक प्रतियोगिता में परिवार-बन्धन की दानशीलता और उदारता के लिए कोई स्थान नहीं है। ये बातें केवल छोटे पैमाने पर सञ्चालित ग्राम-उद्योगों में ही किसी कदर सम्भव हो सकती हैं। 'कानेगाफूची' की सूती मिलों की ऐतिहासिक हड़ताल से यह बात पूरी तरह प्रकट हो चुकी है, जहाँ युवती मजदूरिनों ने विश्राम-गृह-प्रणाली (Dormitry System) द्वारा लगाई गई पाबन्दियों का विरोध करते हुए एक आम-हड़ताल की प्रेरणा दी थी। उक्त 'विश्राम-गृह प्रणाली' जापानी मिल-मालिक की पितृत्व-भावना का प्रतीक समझी जाती थी, किन्तु मजदूरिनों ने उसे अपनी स्वतंत्रता के ऊपर पाबन्दी बतलाकर उसका जोरदार विरोध किया।

एक मात्र राजनीतिक दृष्टि से जापान का अध्ययन करनेवाले लेखकों का कहना है कि जापानी समाज का श्रेणी-विभाजन केवल आर्थिक आधार पर करने से जापानी समाज का चित्रण एकांगी और अपूर्ण रह जायगा। उनका कहना है कि राजनीतिक दृष्टि से, प्राचीन भू-सम्पत्ति ([illegible]) के आधार पर निर्मित वंशों से सम्बन्धित दलों में ही, वहाँ का श्रेणी विभाजन देखा जा सकता है। इस दृष्टि से देखने पर, जापान में किसान, छोटे जमींदार, छोटे कारखाने, छोटे दुकानदार, बड़े व्यवसायी और व्यापारी-परिवार, नौकरशाह, फौजियों और आम बुद्धिजीवी आदि कई श्रेणियाँ बनाई जा सकती हैं; किन्तु इस दृष्टि से एक [illegible] धारणा की ओर ले जाकर भयानक परिणामों पर

के एकाधिकारी गुट हैं। ये ही हैं जापान के कर्ता-धर्ता और विधाता।

धन के एकाधिकारियों में जापान के 'पांच बड़े' (Big Five) कहलानेवाले परिवार, जो संयुक्त रूप से वहाँ के सारे बैंकिंग व्यवसाय के स्वामी हैं, प्रमुख हैं। ये परिवार हैं—मित्सुई, मित्सुबुशी, दईची, यासुदा और सुमीतोमो। इनमें से प्रत्येक की वार्षिक आय २,००,००,००० येन से ऊपर कूती गई है।

गरीब किसानों के २८१ येन वार्षिक आय और उक्त 'पांच बड़ों' के २,००,००,००० येन वार्षिक आय का भयंकर अन्तर दिन पर दिन गंभीर होनेवाली एक सामाजिक समस्या के रूप में उपस्थित हो रही है। न केवल यही अन्तर वरन् बड़े नौकरशाहों की तनख्वाहें भी लगभग पाँच लाख येन वार्षिक से अधिक होती हैं, जहां एक साधारण कर्मचारी की आय मुश्किल से १,२०० येन वार्षिक होती है। धन का यह विषम बँटवारा, यद्यपि अमेरिका और इँगलैंड की अपेक्षा कम दुःसह एवं कठोर है, फिर भी वह जापान में एक प्रबल पूँजीवाद-विरोधी भावना को जन्म दे रहा है।

जापान की सामाजिक समस्याओं में से एक प्रमुख समस्या उसकी जन-संख्या की भी है। जापान की जन-संख्या-सम्बन्धी जांच कई पण्डितों ने कई प्रणालियों से की है, किन्तु उन सबमें अधिक उपयोगी और पूर्ण समझी जाती है, प्रोफेसर नेजिरो [illegible] की जांच। इनका कहना है कि १९३० ई० तक ५५ वर्ष और ५९ वर्ष की उम्रवालों में लगभग १,८२,००,००० की [illegible] होगी। यह अनुमान आधुनिक स्थिति को देखते हुए कहे [illegible] हैं, [illegible] निम्न प्रतीत होता है। और यदि [illegible] यह नहीं हो तो इनका [illegible] कि जापान की आ

किन्तु जापानियों के सांस्कृतिक जीवन में, उनके साहित्य और उनकी कलात्मक कृतियों में देशज प्रभाव की एक जोरदार पुनरावृत्ति होने लगी है। यद्यपि आधुनिक उपन्यासों और नाटकों में आधुनिक विषयों और विचारों का प्रत्यक्ष प्रभाव बढ़ता हुआ देखा जा सकता है, तथापि कविता, ग्राम्य-नाटक और ऐतिहासिक कहानियों में प्राचीन जापानी संस्कृति की अभिव्यक्ति के सतत प्रयत्न, पुनरावर्तनवादी (Revivalist) लेखकों की कृतियों में साफ ही देखे जा सकते हैं। इस प्रकार के लेखकों और कलाकारों की संख्या अधिकाधिक बढ़ती जा रही है, खासकर आकारागी स्कूल की कविता में इन अभिव्यक्तियों की प्रधानता इतने कृत्रिम रूप से होने लगी है कि वह पाठक जो जापान की राष्ट्रीयता के नशे से अप्रभावित है, प्रत्येक दस-पाँच पंक्तियों के बाद एक ऊब अनुभव करने लगता है। उक्त प्रकार के साहित्य-निर्माताओं का स्पष्ट उद्देश्य यह प्रदर्शित करना होता है कि आधुनिक विचारों और नवीन पश्चिमी-संस्कृति के प्रभाव से अछूती रहकर प्राचीन जापान की संस्कृति—उसका प्राण और आत्मा—अपनी प्रचण्ड जीवनी-शक्ति के बल पर आज भी जी सकने में समर्थ है।

जापान के टोकियो और ओसाका जैसे बड़े-बड़े नगर अन्य देशों के बड़े नगरों से निश्चय ही भिन्न हैं। यहाँ के प्रत्येक बड़े नगर में पक्की इमारतों और जापानी ढंग के लकड़ी के मकानों का एक विचित्र सम्मिश्रण देखने को मिलता है जैसा कि अनेकानेक यात्रियों ने अपने यात्रा-विवरणों में बतलाया है। प्रायः अर्ध-पाश्चात्य ढंग के मकानात भी वहाँ नगरों में पर्याप्त संख्या में खड़े हुए हैं। आधुनिक ढंग के [illegible] और नवीनता के सम्मिलित [illegible] जापान के नगरों में [illegible] गये हैं। सिनेमा, थियेटर, बार, रेस्टोरेंट, होटलों की

वह दिन अब दूर नहीं है जब विशाल नगरों में बसनेवाले सम्पत्ति-जीवियों को प्राप्त होनेवाली समस्त सुख-सुविधाओं की माँग वे लोग करने लगेंगे, जिसकी पूर्ति न होने पर जापान में निश्चय ही एक सामाजिक क्रान्ति की सृष्टि होगी। और आर्थिक उपकरणों के साँचे में चलनेवाली ऐतिहासिक प्रक्रिया इस ओर प्रत्यक्ष ही संकेत कर रही है कि उस आनेवाली क्रान्ति से सामाजिक अन्यायों और आर्थिक शोषणों से मुक्त एक नूतन समाज की सृष्टि होगी, जहाँ मनुष्य-द्वारा मनुष्य का शोषण सम्भव न रह जायगा।

जापान की राजनैतिक और सामाजिक प्रगति पर ध्यान रखनेवाले विद्यार्थियों के लिए यह समझ सकना भी कठिन न होगा कि उस दिन के आने का भय जापान की राष्ट्रीय नेताशाही के दिमाग में बुरी तरह घर कर गया है। जापान के देहातियों को नगरों में आने से हर तरह रोकने की कोशिश की जाती है और उन्हें हतोत्साह किया जाता है। देशभक्ति के नाम पर उनसे अपील की जाती है कि वे नगरों में न जाएँ, क्योंकि नगर की जिन सुख-सुविधाओं की वे कामना करते हैं वह विदेशी होने के कारण उनके जापानियों के लिए भोग्य नहीं हैं। इस प्रकार नगरों के आकर्षण से बचाने का प्रधान कारण यह है कि जापान के जीवन में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित हो जाने की सम्भावना, उस वर्ग में शासकवर्ग देखता है। इस प्रासंगिक बात कहना उचित है कि यद्यपि जापान के मजदूरों की स्थिति अच्छी नहीं है, तथापि व्यावसायिक-क्षेत्र के मजदूर और खेतिहर-मजदूर की आमदनी, आवश्यकताओं, इच्छाओं और शक्तियों में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है। यह अन्तर हमारे भारत में भी बहुत स्थलों में देखा जा सकता है। जापान

वितृष्णा का भाव उत्पन्न करनेवाला वायुमंडल पैदा होता रहता है।

किन्तु एक जागरूक विद्यार्थी के मन में इन सारी बातों को जानकर स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि इतने बड़े पैमाने पर दिन-रात चलनेवाली यह जादूगरी वर्तमान शासन के किले को कब तक सुरक्षित रख सकेगी? इस प्रश्न का जवाब दे सकना शायद किसी के लिए सम्भव न होगा। वर्तमान अवस्था यह है कि भारत की तरह यहाँ के नगरों का जीवन तो बहुत-कुछ २०वीं सदी का जीवन बन गया है किन्तु देहातों के किसानों और खेतिहर-मजदूरों का जीवन सामाजिक दृष्टि से मध्ययुग का ही जीवन है। परिस्थितियों ने दोनों प्रकार के जीवन के प्रति एक विवश स्वीकृति का भाव भर दिया है, जिसके भविष्य के बारे में कोई भी अनुमान लगाना मुश्किल नहीं कहा जा सकता।

शिक्षा-प्रणाली और साधारण शिक्षा

जापान की प्रमुख समस्याओं में से एक शिक्षा की समस्या भी है। आधुनिक शासन-प्रणाली के ७० वर्षों के जीवन में जापान की शिक्षा-सम्बन्धी उन्नति अत्यन्त तेज़ी से हुई है, और यहाँ की शिक्षा-सम्बन्धी साधारण स्थिति किसी भी अत्यन्त उन्नत पश्चिमी राष्ट्र से आगे बढ़कर नहीं तो गई है। जापान में जितनी शिक्षा-संस्थाएँ और विश्वविद्यालय हैं उनकी संख्या इंग्लैंड आदि से कहीं ज़्यादा है। फिर भी इस [illegible] शिक्षा-प्रणाली की [illegible] जापान का सार्व विश्वविद्यालय तथा "विश्वविद्यालय [illegible]" के अनुसार ज्ञान [illegible] विश्वविद्यालय, [illegible] शिक्षकों की [illegible] के [illegible] पर, [illegible] के लिए कर्मचारी तैयार करने के [illegible]

विशाल विश्वविद्यालय उसी अवधि में खुला था। प्राइमरी स्कूलों के खोलने और चलाने के काम में भी काफी सफलता मिली।

किन्तु आगे चलकर १८७९ में उक्त योजना रोक दी गई और एक नई योजना उसकी जगह अमल में लाई जानी शुरू हुई। इस नवीन योजना के द्वारा प्राइमरी शिक्षा को और भी असली शक्ल दी गई। फिर १८८६ में एक अन्य शिक्षा कानून बना, जिसके द्वारा शिक्षा में नैतिक और शारीरिक ट्रेनिंग को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। तब से आज तक जापान की शिक्षा की रूप-रेखा बहुत कुछ यथावत् चली आ रही है, यद्यपि साधारण कुछ परिवर्तन हुए हैं और होते रहते हैं।

शिक्षा का प्रारम्भ, योरपियन ढंग पर, 'किंडर-गार्टन'-(बच्चों के बाग) प्रणाली से किया जाता है। फिर प्राइमरी स्कूलों के साथ वास्तविक शिक्षा शुरू होती है। यह प्राइमरी स्कूल दो तरह के होते।—साधारण और उच्च प्राइमरी स्कूल। साधारण प्राइमरी स्कूलों का कोर्स ६ वर्ष से अधिक का होता है, और जब विद्यार्थी १२ वर्ष के हो जाते हैं तब उनके लिए शिक्षा अनिवार्य नहीं रह जाती। यह शिक्षा निःशुल्क होती है जिसका व्यय स्थानीय टैक्सों के जरिये पूरा किया जाता है। जो विद्यार्थी साधारण प्राइमरी शिक्षा के बाद ही स्कूल छोड़ देना चाहते हैं, ऐसा प्रायः होता है, उनके लिए एक कोर्स ([illegible]) होने की व्यवस्था की गई है, जिसमें बताया जाता है कि जीवन की व्यवहारिक शिक्षा [illegible] जाती है।

जो विद्यार्थी आगे भी अपनी शिक्षा जारी रखना चाहते हैं वे उच्च प्राइमरी स्कूलों में भर्ती होते हैं। इन स्कूलों का कोर्स दोनों [illegible] का होता है। यहाँ भी उन विद्यार्थियों [illegible] [illegible]

दृष्टि, योग्य युवकों में पैदा हो गई। इसके साथ ही समष्टिवादी (Communistic) विचार-धारा का उद्भव हुआ। यही वास्तव में समाज-विज्ञान के वैज्ञानिक और दार्शनिक अध्ययनों का एकमात्र युक्तिसंगत परिणाम है, जिसे जापान का सम्पत्ति-शाली-वर्ग 'खतरनाक विचार' कहता है।

जापान में एकाधिक बार युवक मार्क्सवादी प्रोफेसरों को समष्टिवादी विचारधारा का प्रचार करने के अपराध में अपनी नौकरियों से हाथ धोकर जापान की नौकरशाही की गुलामी करने को बाध्य होना पड़ा है। पहले पहल डॉक्टर हाजुओ मोरितो नामक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री को एक लोकप्रिय मासिक-पत्रिका में प्रिन्स क्रोपाटकिन के अराजकवादी सिद्धान्तों का समर्थन करने के कारण, इस प्रकार की मुसीबत उठानी पड़ी थी। उन्हें न केवल विवश होकर नौकरी से ही इस्तीफा देना पड़ा था, बल्कि छः महीने के लिए जेलों की हवा भी खानी पड़ी थी।

जापान के व्यावसायिक संघों और मजदूरों का वर्णन करते हुए हम राजनीतिक विचारधाराओं का तुलनात्मक प्रभाव बता चुके हैं। विद्यार्थियों में केवल दो विचारधाराएं सर्वप्रिय हैं: फासिज्म और कम्युनिज्म (समष्टिवाद)। चूँकि समाजवाद का आधार क्रान्ति न होकर वैज्ञानिक सुधारवाद है, अतएव जापान के विद्यार्थी उसके समर्थकों को वर्तमान गुटबन्दी का समर्थक और पूंजीवादी व्यवस्था का हिमायती ही मानते हैं। दूसरी ओर समष्टिवादियों के कार्यों पर अनेक सरकारी नियन्त्रण होने से स्वभावतः उनकी ओर युवकों का मन अपने आप आकृष्ट होता है। किन्तु जापान की शिक्षा-नीति, इसके सब नियन्त्रणों के होते हुए, साधारण [illegible] विचारों पर भी [illegible] है। इधर हाल में [illegible]

भ्रमशून्य न होगा कि जापान की प्रेस-संस्था से वहाँ के सर्व-साधारण को कोई भी लाभ नहीं हुआ, बल्कि इसके विपरीत आधुनिक रहन-सहन, आधुनिक रुचि और आधुनिक ढंग के आमोद प्रमोद की ओर अधिकाधिक लोगों को प्रवृत्त करने का श्रेय उक्त संस्था को ही प्राप्त है। किन्तु फिर भी इतना निस्सन्दिग्ध है कि सर्वसाधारण के स्वयं निर्णय करने की प्रवृत्ति के विकास में प्रेस के द्वारा घोर बाधा उपस्थित की गई है। तात्पर्य यह कि जन-शिक्षा के इस साधन का भयंकर दुरुपयोग करके जनता में स्वतन्त्र विचारों की उत्पत्ति और स्वतन्त्र निर्णय के भाव को रोकने और दबाने की सतत चेष्टा की गई है, और की जा रही है।

विचार-स्वातंत्र्य और विचारों की अभिव्यक्ति के ऊपर [illegible] नियन्त्रण होने के कारण पत्र-[illegible] स्वतन्त्र आलोचना के लिए एक कठोर सीमा-[illegible] भीतर ही रहकर उन्हें सरकार की इच्छा [illegible] अनुसार शिक्षा प्रचार का कार्य करने की [illegible] साधारण ज्ञान-विज्ञान के [illegible] गई है, क्योंकि किसी भी विषय [illegible] का सन्तोषप्रद अध्य-यन [illegible] जब तक वर्तमान सामा-जिक [illegible] आलोचना करने का अधिकार न प्राप्त हो।

[illegible] की दशा

[illegible] में, जिस युग को जापान के [illegible] कहा जाता है, [illegible] सम्पत्ति (Private [illegible]

भी, परिवारों में, स्त्रियों के नैतिकता-सम्बन्धी विचारों में मौलिक परिवर्तन घटित होने लगे हैं।

व्यावसायिक क्षेत्रों में मजदूरी करने का द्वार उन्मुक्त होने के कारण उनकी आर्थिक दासता धीरे-धीरे दूर हो रही है सही, किन्तु रोजी पाने में भयङ्कर प्रतियोगिता और कदम-कदम पर फैली हुई बेकारी की विभीषिका ने उनके जीवन में एक अत्यन्त भयावनी कठोरता की सृष्टि कर दी है। उन्नत शिक्षा के प्रसार से भी परिवार के बन्धन बहुत कुछ ढीले हुए हैं, और हो रहे हैं। और इतना तो निस्सन्दिग्ध भाव से कहा जा सकता है कि जापान की आधुनिक स्त्रियाँ बीस वर्ष पहले की स्त्रियों से शारीरिक, सामाजिक और पारिवारिक, हर दृष्टि से कहीं अधिक उन्नत और सजग हो गई हैं।

यद्यपि लड़कियों की शिक्षा प्रारंभिक स्कूलों में लड़कों की ही तरह होती है, किन्तु उच्च शिक्षा में उनके लिए अलग व्यवस्थाएँ की गई हैं। उनके लिए अलग विश्वविद्यालय और कालेज आदि हैं, जिनमें विशेष ढंग से आज्ञाकारिता और वैयक्तिक त्याग, बलिदान आदि की शिक्षा उनके हृदयों में 'इन्जेक्ट' की जाती है, ताकि उनकी गुलामी बरकरार बनी रहे। पर यही लड़कियाँ जब रोजी के मैदान में आकर प्रतियोगिता के क्षेत्र में धक्के पर धक्के खाने लगती हैं, तब उनको आँखें खुले बिना नहीं रह सकतीं और उनको अपनी स्थिति का अत्यन्त कटु[illegible] ज्ञान होता है।

स्त्रियों को [illegible] में [illegible] प्रोत्साहन [illegible] दिये जाते हैं वहीं पुरुषों के लिए [illegible] साधारण स्थान [illegible] जाती है। आधुनिक [illegible] में [illegible] और [illegible] लगे हैं, पर [illegible] देखने को [illegible]। [illegible] सामाजिक

रोमाण्टिक प्रेम की उतनी ही भूखी होती है जितनी किसी भी अन्य देश की स्त्री हो सकती है।

उक्त लेखक का यह कहना सत्य के बहुत निकट लगता है कि जापान की स्त्री प्रेम की भूखी होती है, क्योंकि जहां पुरुषों का शरीर और मन की भूख मिटा सकने के अनेक मार्ग खुले हैं उनके ऊपर कोई नैतिक पाबन्दी नहीं है, वहां स्त्री के लिए चारों ओर से मार्ग अवरुद्ध हैं। वह निर्धारित नैतिक लीक से एक कदम भी हटकर सम्मानपूर्ण जीवन बिताने की अधिकारिणी नहीं रह पाती है।

स्त्रियों को केवल राजनीतिक सभाओं में भाग ले सकने भर का अधिकार है, वे न तो किसी राजनैतिक दल की सदस्या हो सकती हैं और न निर्वाचनों आदि में ही भाग ले सकती हैं। उन्हें नागरिक अधिकार भी नहीं प्राप्त हैं, जिससे वे स्थानीय शासनों में भी अपनी आवाज ऊंची कर सकें। फिर भी १९२५ के 'आम-निर्वाचन-क़ानून' (General Election Law) के लागू होने के बाद से जापान की जागृत नारियां, जो आधुनिक विचारों से अवगत और आधुनिक शिक्षा प्राप्त हैं, इस बात के लिए लगातार आन्दोलन करती आ रही हैं कि स्त्रियों को मताधिकार अवश्य प्राप्त होना चाहिए। उनका विश्वास है कि बिना मताधिकार प्राप्त किये जापान की स्त्रियों की कोई भी उन्नति सम्भव नहीं है।

स्त्रियां शिक्षा-विभाग में साधारण नौकरियां पाने की अधिकारिणी यद्यपि मान ली गई हैं, किन्तु उन्हें केवल साधारण पदों पर ही रखा जाता है। उनका कोई स्वतन्त्र [illegible] नहीं माना जाता, वे केवल शिक्षकों की सहायिकाएं ही समझी जाती हैं। स्त्रियों के लिए भी विश्वविद्यालय अथवा कालेज की पढ़ाई [illegible] सुविधाजनक नहीं है। यहां तक [illegible]

रण कुछ परिवर्तन होने प्रारम्भ हो गये हैं। १९३१ ई० के बाद ने स्त्रियों को एक संशोधित कानून के द्वारा कानूनी शिक्षा प्राप्त करने और वकालत आदि का पेशा करने की सुविधा मिल गई है। इसके अतिरिक्त कानून में लिखा न होने पर भी कई ऐसे अधिकार, जो आधुनिक विचार अथवा मानवता की दृष्टि से अत्यन्त स्वाभाविक और साधारण हैं, उन्हें अदालतों के फैसलों से मिलने लगे हैं। उदाहरण के लिए एकाधिक अवसरों पर ऐसा होते हुए देखा गया है कि तलाक के मुकदमों में कानूनी व्यवस्था न होने पर भी बच्चों को रखने की आज्ञा अदालतों से माताओं को मिली है।

जापानी समाज में सम्पन्न पुरुषों का रखैलियाँ रखना शोभा और गौरव समझा जाता है। सात साल पहले 'इम्पीरियल हाउस-होल्ड विभाग' ने सरदार (Peerage) परिवारों की जाँच करके यह बात प्रकाशित की थी कि ९२४ परिवारों में से अधिकांश परिवारों की कानूनी स्त्रियाँ केवल नाममात्र के लिए ही पति से सम्बन्धित हैं, और उनके पति अपनी रखैलियों के साथ जीवन बिताते हैं। जापान के सामाजिक विचारों के अनुसार 'प्रेम' शब्द का एकमात्र अर्थ होता है विवाहेतर-सम्बन्ध। वैवाहिक जीवन में प्रेम का नाम लेना भी [illegible] समझा जाता है। न केवल इतना ही बल्कि [illegible] पुरुषों से [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] पर [illegible] [illegible] कोई भी [illegible] नहीं [illegible] है। [illegible] [illegible] (L[illegible]) [illegible] [illegible] है।

[illegible]

[illegible]

जापान में वह अपने माता-पिता के लिए एक वरदान जैसी मानी जाती है। हर साल सैकड़ों लड़कियाँ अपने को अपने माता-पिता का पेट भरने के लिए बेच डालती हैं।* *ये माता-पिता कृषि की आर्थिक दुरवस्था के शिकार हुए किसान होते हैं।*

इस प्रकार बुराई को भलाई करके दिखाने की प्रवृत्ति उक्त पुस्तक की प्रत्येक पंक्ति में देखी जा सकती है। कोई भी मनुष्य साधारण स्थितियों में अपने को बेचना गवारा नहीं करेगा। संकट के अत्यन्त नाजुक अवसरों पर ही ऐसा हो सकना सम्भव है। केवल इतनी-सी बात से ही किसानों-मजदूरों की भयंकर दरिद्रता का अन्दाजा आसानी से लगाया जा सकता है। फिर उनकी स्त्रियों की स्थिति तो और भी सहज अनुमेय है।

व्यावसायिक क्षेत्रों में काम करनेवाली मजदूरिनों की अवस्था पर ही पहले विचार किया जाय। जापान के रेशमी और सूती कपड़े तथा धागे के कारखानों में लगभग ८० फी सदी श्रमिक औरतें हैं। उन्हें १५ येन प्रतिमास की मजदूरी पर १२ घंटे रोज काम करना होता है, जिसमें से भी १५ सेन (लगभग डेढ़ आना) प्रतिदिन के हिसाब से उन्हें कारखानों के आश्रय-स्थानों (Dormitories) में रहने के लिए दे देना पड़ता है। नई भर्ती होनेवाली मजदूरिनों की मजदूरी तो होती है कुल ३५ सेन प्रतिदिन, फिर भी उन्हें उक्त १५ सेन प्रतिदिन के हिसाब से अपने भोजन और रहने का देना ही पड़ता है।

ऊपर लड़कियों के बेचे जाने और गिरवी की बात कह चुके हैं। ऐसा इस हालत में माता-पिता उनके [illegible] ही करते हैं। [illegible] की यह स्वीकृत एवं निश्चित [illegible] पर [illegible] है। उन्हें किसी भी [illegible] के लिए [illegible]

* [illegible] हैं। —लेखक

आता है। किसान तत्काल ही जापानी ढंग से साष्टांग प्रणाम करता है। अपनी भूलों के लिए क्षमा माँगता है। तब अतिथि भी इस अभिवादन का उत्तर अत्यन्त शिष्ट और विनयपूर्ण शब्दों में देता है। तत्पश्चात् बूढ़ा अपने अतिथि का चाय से सत्कार करता है। अतिथि बड़े धीरे-धीरे ज़रा-ज़रा-सी चाय पीता है। जब यह सब शिष्टाचार हो चुकता है, तब प्रयोजन की बात होती है। लड़की छः बरस की हो, या सोलह बरस की हो, या छब्बीस बरस की हो, वह अपना मुँह नहीं खोल सकती। जब सौदा तय हो जाता है, तब वह तुरन्त ही नवागन्तुक के साथ कर दी जाती है। साथ में अपने थोड़े से कपड़े ले उसे चल देना होता है, एक अज्ञात भविष्य और अनजाने जीवन की ओर।

अनजाने ही वह वेश्यालय में पहुँच जाती है। वहाँ भवन की भव्यता देखकर वह आश्चर्य-चकित हो जाती है और कुछ क्षणों के लिए अपनी गन्दी और गरीब झोंपड़ी से उस सुसज्जित महल में आकर अपने को सौभाग्यवती समझती है। वेश्यालय का संचालक ताली बजाता है और अंदर से एक बूढ़ी औरत निकल कर आती है। नवागत युवती उस बुढ़िया के साथ चली जाती है, जो उसे स्नान कराकर उसका शृङ्गार करती है। उसे यह भी पता नहीं रहता कि इस शृङ्गार और वस्त्राभूषणों का मूल्य उसे ही चुकता करना पड़ेगा, क्योंकि इस वर्ष के भीतर उसके पैरों की आमदनी में से ही इन चीज़ों का मूल्य काट लिया जायगा और वह देना करने लगती है। [illegible] जब वह भयानक [illegible] से [illegible] [illegible] निराश बैठी रहती है।

इस प्रकार के वेश्यालयों [illegible]।

५०,००० और २०,००० येन तक की रिश्वतें इस सम्बन्ध में जापान-सरकार के मन्त्रियों ने स्वीकार की हैं और इस बात के प्रमाण भी मौजूद हैं।

इन वेश्यालयो से इतना अधिक लाभ होते हुए भी, कुछ लोग सरकारी टैक्स से बचने के लिए इन्हे गुप्त ही रखते हैं; और सदैव थोड़े-थोड़े समय पश्चात् स्थान बदलते रहते हैं। इनमें लड़कियो को किसी प्रकार की भी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता नहीं होती। वे बिलकुल बन्दिनी-सी होती हैं। इन गुप्त वेश्यालयो में अक्सर ही लड़कियाँ सड़क पर से उठाकर ले आई जाती हैं। और यह कुकर्म करनेवाली होती हैं औरतें ही, और बहुधा वेश्यालय के मालिकों की पत्नियाँ। छोटी-छोटी अवस्था की अनजान लड़कियो को ये कुटनी औरतें सड़क पर से किसी तरकीब से बहकाकर ले आती हैं। तत्पश्चात् वेश्यावृत्ति के उपयुक्त उन्हें शिक्षा दी जाती है। टोकियो-प्रान्त में शिनागाना का ज़िला इस प्रकार के गुप्त वेश्या-व्यापार का केन्द्र है।

जापान को बालकों का स्वर्ग कहा जाता है, लेकिन बाहरी दुनिया की आँखों से दूर अनगिनती घरो में छोटी-छोटी लड़कियो को गीशा बनने की शिक्षा दी जाती है। जो ऐसी लड़कियाँ लगभग पन्द्रह वर्ष की अवस्था की हैं उनकी संख्या जापान में ४०,००,००० है! जापान में गर्भ-निरोध के वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग इसी लिए नहीं होता कि वहा बच्चो की बड़ी आवश्यकता रहती है। बच्चे अपने मा-बाप की जायदाद होते हैं, जिनसे उन्हें आमदनी होती है। पहले तो इन वेश्यालयो के व्यापारी एक सात आठ वर्ष की सुन्दर लड़की के लिए ५० से ६० येन तक क़ीमत दे देते थे, लेकिन लड़कियों की तादाद इतनी बढ गई है कि अब वह केवल १० येन में ही खरीद ली जाती है।

चोरी का अपराध लगाते हैं। दलाल के साथ सादे वेश में आये हुए गुप्तचर पुलिस होने का बहाना करते हैं और लड़की को पकड़ ले जाते हैं।

फार्मोसा में क्रान्ति का प्रमुख कारण था वहाँ के निवासियों की जवान लड़कियों और पत्नियों पर जापानी पुलिसवालों का खुलेआम बलात्कार। एक जापानी पत्र 'जापान टाइम्स' ने तो इस विषय में खुलकर फार्मोसा की जापानी सरकार की कड़ी आलोचना की थी।

कोरिया में भी यही होता है। लूट मार, जवान लड़कियों की चोरी और उन पर खुलेआम बलात्कार।

वेश्यालयों में लड़कियों पर भयानक अत्याचार होते हैं। बहुत-सी तो भाग खड़ी होती हैं या आत्महत्या करके मर जाती हैं। ऐसी घटनायें वहाँ इतनी साधारण हो गई हैं कि अब कोई इनकी परवाह भी नहीं करता। इतना ही नहीं, जापानियों ने कोरिया में भी चकले खोल रखे हैं, और उपनिवेशों की लड़कियों को गुलामी के बन्धन में जकड़कर उन पर भयानक अत्याचार किये जाते हैं। किसी भी लड़की का वहाँ से भाग निकलना भी दुष्कर है, लगभग असम्भव! चकलों के मालिक, लड़कियों के माता-पिता के पास जाकर, कर्ज रुपयों की माँग करते हैं; और जब तक उनका रुपया नहीं मिल जाता तब तक, लड़कियों को मजदूर होकर धन्धे में लगना पड़ता है। [illegible] [illegible] [illegible] लड़कियों पर [illegible] [illegible] लड़कियों के [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] स्वीकार करती हैं। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, क्योंकि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

सामाजिक अपवाद का शिकार होना पड़ता है अन्त में ' गीशा लड़कियाँ बहुत कम लोगों की वासना-पूर्ति का साधन बन पाती हैं, तिस पर भी भरपूर मुँहमाँगी रकम लेकर।"

उक्त लड़की का यह वक्तव्य अत्युक्ति भरा कहा जा सकता है, किन्तु इसमें सचाई भी बहुत हद तक है, यह मानना ही पड़ेगा। उन्हें उनके मालिक किसी खास व्यक्ति के साथ जिसके साथ लड़की न चाहे, सोने को बहुत कम विवश करते हैं। इन लड़कियों को पिकनिक वगैरह में भी लोगों के साथ जाना होता है, और अपने मालिकों की वासनापूर्ति तो उन्हें प्रायः करनी ही होती है।

'माइनीची' पत्रिका में एक बार प्रकाशित हुआ था :—

"कुछ स्कूल की लड़कियाँ एक सुप्रसिद्ध चाय-गृह में टूट पड़ीं और वास्तव में एक गीशा लड़की कैसी होती है यह देखने के लिए उतावली हो उठीं। किन्तु उन्होंने देखा कि कुछ मोटे-मोटे सरकारी अफसर एक कमरे में कुछ कुमारियों के साथ काम-लीला में रत थे! वहीं उस कमरे में घुसने पर इस कृत्य को करते हुए स्कूली लड़कियों के देख लेने से सरकारी अफसरों को बड़ा आश्चर्य और क्षोभ हुआ। लेकिन हमारा ख्याल है कि उन्हें इस अवस्था में देखकर आश्चर्य और क्षोभ तो स्कूल की लड़कियों को भी हुआ होगा।"

जापान में होटलों आदि की वेट्रेसेज (Waitresses) भी व्यावसायिक लड़कियाँ ही होती हैं। दुकानों और चाय-घरों आदि में सर्वत्र स्त्रियाँ ही दिखाई देती हैं, और इन सब नौकरियों की आड़ में इन्हें अपना पेट पालने के लिए शरीर-विक्रय करना ही होता है।

सातवाँ अध्याय

साम्राज्य-विस्तार

सन् १८५३ ई० तक जापान का राज्य केवल क्यूशू से येजो तक के चार बड़े द्वीपों में सीमित था। एशिया की भूमि पर और कहीं भी उसका अधिकार नहीं था। ल्यूक्यू के द्वीप-समूह, जो आधुनिक जापान का अविच्छिन्न अङ्ग है, उस समय चीन के करद राज्य थे और उनका अलग अस्तित्व था। येजो के उत्तर में सखालिन और क्युराइल द्वीपों के समुद्री किनारों पर जापानी मछुए और छोटे व्यापारी आते-जाते अवश्य रहते थे, किन्तु वहाँ भी जापानी शासन नहीं था। येजो का भी सुदूर दक्षिणी भाग ही जापान के आधिपत्य में था, शेष भाग में 'ऐनो' नामक जङ्गली मूल अधिवासी (Aborigines) रहते थे, जो किसी भी शासन की लगाम मानने को तैयार नहीं थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि जापान के राज्य में उस समय होन्शू, शिकोकू, क्यूशू और अन्य निकटवर्ती लघु-द्वीप ही शामिल थे।

प्रागैतिहासिक काल से ही जापान पर कोई सफल आक्रमण नहीं हो सका है। चीन के मंगोल सम्राट् कुबलई खाँ ने तेरहवीं शताब्दी में जापान पर आक्रमण किया था, किन्तु उसे मुँह की खानी पड़ी थी। इस प्रकार सम्पूर्ण एशिया को अपने [illegible] के आक्रमण की विफलता ने जापानियों में इस परम्परागत धारणा को और भी दृढ़ कर दिया कि जापान ईश्वर की ओर से सुरक्षित और अजेय बनाया गया है। जापान के इतिहास में कुबलई खाँ के आक्रमण का वही स्थान है, जो इंग्लैंड के इतिहास

इन कठपुतली सरकारों के द्वारा एक प्रकार से अन्य रूप से शासन करने की प्रणाली उसने चलाई। जापान के सिद्धान्त के मुताबिक मन्चूको (मंचूरिया का जापानी नामकरण) स्वतन्त्र राज्य है और कोई भी राष्ट्र उसके साथ अपना राजनीतिक सम्बन्ध कायम कर सकता है, यदि वह उसकी स्वतन्त्रता और चीन से असम्बद्धता का जापानी दावा स्वीकार कर ले। संसार इस सिद्धान्त को उपहासास्पद समझता है और वास्तविकता यह है कि मन्चूको पूर्णतः जापानी अधिकार में है किन्तु साम्राज्यवादी राष्ट्रों के लिए उनका कोई भी सिद्धान्त उपहासास्पद नहीं होता। जापान ने सम्भवतः अपना उक्त सिद्धान्त इंग्लैंड के एक उदाहरण को सामने रखकर ही घोषित किया था। पाठकों को याद होगा कि गत महायुद्ध के समाप्त होने के बाद राष्ट्र [illegible] संगठन पूर्णतः स्वतन्त्र अथवा औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त [illegible] के संघ के रूप में ही हुआ था। फिर भी राष्ट्र [illegible] प्रधान हाथ रखनेवाले इंग्लैंड ने गुलाम भारत [illegible] में राष्ट्रसंघ में शामिल करा दिया। इसके दो [illegible] सुधारवादी और कायर बुद्धिजीवी भारतीयों [illegible] पन्न होने के लिए और दूसरे राष्ट्रसंघ में अपने [illegible] वृद्धि के लिए। इस प्रकार इंग्लैंड ने गुलाम के लिए भारत [illegible] राष्ट्रों के संघ में शामिल कर लिया। जापान [illegible] स्वतन्त्रता [illegible] भी इसी [illegible] है, क्योंकि [illegible] संघ के [illegible] [illegible]

वरन् कठपुतली सरकारों के द्वारा एक प्रकार से अन्य रूप से शासन करने की प्रणाली उसने चलाई। जापान के सिद्धान्त के मुताबिक मन्चूको (मंचूरिया का जापानी नामकरण) स्वतन्त्र राज्य है और कोई भी राष्ट्र उसके साथ अपना राजनैतिक सम्बन्ध कायम कर सकता है, यदि वह उसकी स्वतन्त्रता और चीन से असम्बद्धता का जापानी दावा स्वीकार कर ले। संसार इस सिद्धान्त को उपहासास्पद समझता है और वास्तविकता यह है कि मन्चूको पूर्णतः जापानी अधिकार में है, किन्तु साम्राज्यवादी राष्ट्रों के लिए उनका कोई भी सिद्धान्त उपहासास्पद नहीं होता। जापान ने सम्भवतः अपना उक्त सिद्धान्त इँग्लैंड के एक उदाहरण को सामने रखकर ही घोषित किया था। पाठकों को पता होगा कि गत महायुद्ध के समाप्त होने के बाद राष्ट्रसंघ का संगठन पूर्णतः स्वतन्त्र अथवा औपनिवेशिक स्वराज्य-प्राप्त देशों के संघ के रूप में ही हुआ था। फिर भी राष्ट्रसंघ के कार्यों में प्रधान हाथ रखनेवाले इँग्लैंड ने गुलाम भारत को भी १९१९ में राष्ट्रसंघ में शामिल करा दिया। इसके दो कारण थे—एक तो सुधारवादी और कायर बुद्धिजीवी भारतीयों को झूठा आश्वासन देने के लिए और दूसरे राष्ट्रसंघ में अपने एक वोट की पूर्ति के लिए। इस प्रकार इँग्लैंड ने नाम के लिए भारत को स्वतन्त्र राष्ट्रों के संघ में शामिल कर लिया। जापान का, मन्चूको की स्वतन्त्रता का, सिद्धान्त भी इसी [illegible] [illegible] [illegible] है, क्योंकि [illegible] राष्ट्रसंघ के [illegible] इँग्लैंड की [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कि मन्चूको भी भारत की तरह ही स्वशासन प्राप्त देश है [illegible] [illegible] [illegible] को भी इसी तरह अपनी [illegible] [illegible] [illegible] अधिकार है [illegible] [illegible] को अपना [illegible] [illegible] [illegible]

भी जापानी फौजों की अगली कतारें जो सीमा-रेखा बना रही हैं उन्हें जापानी अधिकार के भीतर माना जा सकता है। इन भागों की जन संख्या लगभग १० करोड़ होगी। इसके अतिरिक्त मन्चूको के जापानी-अधिकृत (जापानी सिद्धान्त के अनुसार 'स्वतन्त्र') देश की जन-संख्या भी ३ करोड़ से ऊपर है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जापान का साम्राज्य-विस्तार दो काल में दो प्रकार से हुआ है। १९३१ तक होनेवाला साम्राज्य-विस्तार नियमित और व्यवस्थित ढंग से हुआ और उसके बाद अनियमित और अव्यवस्थित।

१९३१ तक जो उपनिवेश जापान के अधिकार में थे, वे सभी मूल्यवान होते हुए भी ऐसे नहीं थे जो बहुत दिनों तक जापान की आर्थिक स्थिति को दृढ़ बना सकते। आर्थिक राष्ट्रीयता की भावना संसार में दिन-दिन बढ़ रही है, जिससे व्यापार-प्रतियोगिता अत्यन्त भयंकर हो उठी है। पुराने उपनिवेश (१९३१ के पहले के) इस प्रतियोगिता में जापान की आर्थिक सहायता बहुत दिनों तक नहीं कर सकते थे, और न यही सम्भव था कि किसी भावी युद्ध में जापान का आर्थिक पतन होने से ये उपनिवेश रक्षा कर पाते; क्योंकि, यद्यपि जापान और कोरिया किसी कदर अपने उपयोग भर के लिए खाद्य पदार्थ पैदा कर लेते हैं और फार्मोसा चीनी, फल और [illegible] आदि चीजों से उसकी पर्याप्त सहायता करता है, फिर भी हम यह देख चुके हैं कि खनिज पदार्थों तथा कई अत्यन्त आवश्यक कच्चे मालों के लिए जापान को विदेशी व्यापारों पर ही निर्भर रहना पड़ रहा है। सामरिक साधनों की कमी और [illegible] की [illegible] अवस्था में, यदि [illegible] का सहारा पाना और [illegible] न हो, तो [illegible] के लिए तैयार माल [illegible] करना, [illegible]

चीन पर आक्रमण कर दिया। उक्त आक्रमण का सामना चीन की जनता साहस और दिलेरी के साथ लगभग पिछले चार वर्षों से निरन्तर करती आ रही है। इस लड़ाई के चलते, यद्यपि चीन की भयंकर क्षति हुई है, जापान की आर्थिक स्थिति एकदम डाँवाडोल हो उठी है; साथ ही 'पुरुष-शक्ति' (Man-Power) का भी ऐसा दिवाला निकलता जा रहा है कि सारी परम्पराओं के बावजूद भी आज जापान के आफिस आदि के कार्यों में स्त्रियों को लगाया जा रहा है और पुरुषों को चीन की रणभूमि में तोपों का चारा (Cannon Fodder) बनने को लगातार भेजा जा रहा है।

उपनिवेशों का शासन

१८९४-९५ के चीन जापान-युद्ध के बाद, १८९६ के अप्रैल मास में फारमोसा का औपनिवेशिक शासन, नव-स्थापित 'उपनिवेश विभाग' की देख-रेख में, प्रारम्भ हुआ। तब फारमोसा और येजो के भी शासन-प्रबन्ध का नियन्त्रण उस विभाग के मन्त्री के हाथों में था। १८९७ के अगस्त में उक्त विभाग तोड़ दिया गया, तथा राष्ट्रीय सरकार के प्रधान मन्त्री (Minister President) के मातहत, उपनिवेशों का नियन्त्रण और देखरेख का काम, हस्तान्तरित कर दिया गया। आगे चलकर १८९८ में यह कार्य गृह-मन्त्री के सुपुर्द किया गया। फिर जब कोरिया पर जापान का प्रबन्ध स्थापित हो गया तब १९१० में राष्ट्रीय सरकार का औपनिवेशिक शासन 'समुद्र पार के प्रान्तों' के ब्यूरो के अधीन कर दिया गया। एक बार फिर आगे चलकर यह कार्य गृह-मन्त्री के सुपुर्द किया गया। अन्त में १९२९ की जुलाई में पुनः [illegible] स्थापित हुआ और अभी हाल, जून १९[illegible], में, औपनिवेशिक मन्त्री का पद दुबारा कायम करके औपनिवेशिक शासन का नियन्त्रण उसी के हाथों में दे दिया गया है।

प्रमुख थे—(१) जापान का प्रभाव भीतरी मंगोलिया (Inner Mangolia) के रास्ते पश्चिम की तरफ आगे बढ़ाकर चीन और रूस से अलगाव कर देना, जिसके द्वारा सैनिक नेताओं ने यह आशा की थी कि भीतरी मंगोलिया में एक कठपुतली शासन खड़ा करके रूसी प्रभाव क्षेत्र का बाहरी मंगोलिया (Outer-Mangolia) से आगे बढना रोका जा सकेगा; (२) उत्तरी चीन को नानकिन सरकार से अलग करना जिसके लिए व्यापिकगत हितों और व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं के लिए उतावले उत्तरी प्रदेशों के सामन्त-सरदारों को कूटिनीति के द्वारा जापान ने अपनी ओर कर लिया था, और (३) उत्तरी-चीन को मन्चूको के साथ मिलाकर एक महान आर्थिक शक्ति बनाना, जिसका संचालन जापान के हितों के लिए किया जा सके। यह जापानी नीति १९३५ में सफलता के बहुत निकट तक पहुँच गई थी। सितम्बर में जनरल तादा और कर्नल दोइहारा ने हॉपेई, शान्तुंग, शान्सी, चाहार और सुईयुवान के पाँचों प्रान्तीय गवर्नरों से उत्तरी चीन में एक कथित 'स्वतन्त्र राज्य' की स्थापना करने के विचार से सलाह मशविरा करना शुरू किया। यह बातचीत सफलता के बहुत निकट पहुँच चुकी थी कि अकस्मात् जनरल चियांग-काई शेक ने उन गवर्नरों को जापानी अधिकारियों से किसी भी प्रकार की बातचीत करने की मनाही कर दी जिससे सारी उस भारी योजना नष्ट-भ्रष्ट हो गई।

किन्तु जापानी साम्राज्यवादी भी सतर्क थे। [illegible] पेकिंग के मार्कोपोलो के पुल पर चीन और जापान के सैनिकों में एक साधारण झगड़े को बहाना बनाकर, जापान ने, ७ जुलाई, १९३७ को, चीन के ऊपर एक बड़े पैमाने पर आक्रमण कर दिया। अब [illegible] का [illegible] शुरू हो गया और चीन के साम्यवादियों ने राष्ट्र

बीच में ऐसा प्रतीत होने लगा था कि टोकियो 'धुरी-शक्तियों' से अलग हो जायगा, क्योंकि योरपीय युद्ध का रुख अभी स्पष्ट नहीं हो पाया था, किन्तु ज्योंही पलड़ा जर्मनी की ओर झुकता दिखाई दिया, त्योंही 'धुरी-राष्ट्रों' का एक नया सुलहनामा हुआ, जिसे 'त्रिराष्ट्र-संधि' कहा जाता है। उसके बाद ही पूर्व में जापान क्रियाशील हो उठा। यहाँ तक कि उसने धमकी देकर ब्रिटेन से बर्मा-चुङ्किङ्ग सड़क भी बन्द करवा दी। उस सड़क से चीन की सरकार को बहुतेरी युद्धसामग्रियाँ पहुँचती थीं। योरप की लड़ाई से लाभ उठाने के लिए जापान ने सतत कोशिशें शुरू कर दी हैं।

इधर पूर्व एशिया में इतिहास बड़ी तेजी के साथ अपने क़दम उठा रहा है। जर्मनी, इटैली और जापान की त्रिराष्ट्र सन्धि के प्रतिक्रिया-स्वरूप अमेरिका ने जापान को धमकी दी और ब्रिटेन ने बरमा-चीन की सड़क फिर से खोल दी है। पहले-पहल तो ऐसा जान पड़ा कि जापान केवल बढ़-बढ़कर बातें ही कर सकता है, आगे बढ़ने की हिम्मत उसमें नहीं। चीन-जापान-युद्ध के आरम्भ में ही, पूर्व एशिया की राजनीति का अध्ययन करनेवाले कितने ही विशेषज्ञ लोगों ने बार-बार यह बात कही है कि जापान की बातें कोरी डींग हैं, उनमें सत्य कुछ भी नहीं है। चीन में सैनिक हलचल का महत्त्व अब कम हो गया है, मुख्य स्थान अब कूटनीतिक कार्रवाइयों ने ले लिया है। जापानी लोग अब दो बातों पर अपने ध्यान को केन्द्रित किये हुए हैं। एक तो वे यह चाहते हैं कि रूस के साथ जापान की किसी तरह की अनाक्रमण सन्धि हो जाय, जिससे वे मञ्चूरिया में रखी हुई पैदल और हवाई सेना को हटाकर दूसरी जगह ले जा सकें। दूसरे वे यह चाहते हैं कि चीन की सरकार भी उनकी 'मुनरो नीति' मंजूर कर ले और चीन का

बीच मे ऐसा प्रतीत होने लगा था कि टोकियो 'धुरी-शक्तियो' से अलग हो जायगा, क्योंकि योरपीय युद्ध का रुख अभी स्पष्ट नहीं हो पाया था, किन्तु ज्योंही पलड़ा जर्मनी की ओर झुकता दिखाई दिया, त्योंही 'धुरी-राष्ट्रो' का एक नया सुलहनामा हुआ, जिसे 'त्रिराष्ट्र-सधि' कहा जाता है। उसके बाद ही पूर्व मे जापान क्रियाशील हो उठा। यहाँ तक कि उसने धमकी देकर ब्रिटेन से बर्मा-चुङ्किङ्ग सड़क भी बन्द करवा दी। उस सडक से चीन की सरकार को बहुतेरी युद्धसामग्रियाँ पहुँचती थी। योरप की लडाई से लाभ उठाने के लिए जापान ने सतत कोशिशें शुरू कर दी हैं।

इधर पूर्व एशिया मे इतिहास बडी तेजी के साथ अपने कदम उठा रहा है। जर्मनी, इटैली और जापान की त्रिराष्ट्र सन्धि के प्रतिक्रिया-स्वरूप अमेरिका ने जापान को धमकी दी और ब्रिटेन ने बरमा-चीन की सड़क फिर से खोल दी है। पहले-पहल तो ऐसा जान पड़ा कि जापान केवल बढ़-बढ़कर बातें ही कर सकता है, आगे बढ़ने की हिम्मत उसमें नहीं। चीन-जापान-युद्ध के आरम्भ से ही, पूर्व एशिया की राजनीति का अध्ययन करनेवाले कितने ही जिम्मेदार लोगों ने बार-बार यह बात कही है कि जापान की बातें कोरी डींग हैं, उनमें तत्त्व कुछ भी नहीं है। चीन में सैनिक हलचल का महत्त्व अब कम हो गया है, मुख्य स्थान अब कूटनीतिक कार्रवाइयों ने ले लिया है। जापानी लोग अब दो बातों पर अपने ध्यान को केन्द्रित किये हुए हैं। एक तो वे यह चाहते हैं कि रूस के साथ जापान की किसी तरह की अनाक्रमण सन्धि हो जाय, जिससे वे मंचूरिया में रहनेवाली पैदल और हवाई सेना को हटाकर दूसरी जगह ले जा सकें। दूसरे वे यह चाहते हैं कि चीन की सर-कार भी [illegible] की शर्तें मंजूर कर ले और चीन का

बीच में ऐसा प्रतीत होने लगा था कि टोकियो 'धुरी-शक्तियों'
से अलग हो जायगा, क्योंकि योरपीय युद्ध का रुख अभी स्पष्ट
नहीं हो पाया था, किन्तु ज्योंही पलड़ा जर्मनी की ओर झुकता
दिखाई दिया, त्योंही 'धुरी-राष्ट्रों' का एक नया सुलहनामा हुआ,
जिसे 'त्रिराष्ट्र-सधि' कहा जाता है। उसके बाद ही पूर्व मे जापान
क्रियाशील हो उठा। यहाँ तक कि उसने धमकी देकर ब्रिटेन से
बर्मा-चुङ्किङ्ग सडक भी बन्द करवा दी। उस सडक से चीन की
सरकार को बहुतेरी युद्धसामग्रियाँ पहुँचती थीं। योरप की लडाई
से लाभ उठाने के लिए जापान ने सतत कोशिशें शुरू कर दी है।

इधर पूर्व एशिया मे इतिहास बड़ी तेजी के साथ अपने
कदम उठा रहा है। जर्मनी, इटैली और जापान की त्रिराष्ट्र सन्धि
के प्रतिक्रिया-स्वरूप अमेरिका ने जापान को धमकी दी और
ब्रिटेन ने बरमा-चीन की सडक फिर से खोल दी है। पहले-
पहल तो ऐसा जान पडा कि जापान केवल घट-बढ़कर
बातें ही कर सकता है आगे बढने की हिम्मत उसमें नहीं।
चीन-जापान-युद्ध के आरम्भ में ही, पूर्व एशिया की राजनीति
का अध्ययन करनेवाले कितने ही जिम्मेदार लोगों ने बार-बार
यह बात कही है कि जापान की बातें कोरी डींग हैं, उनमें तथ्य
कुछ भी नहीं है। चीन में सैनिक [illegible] का महत्त्व अब कम
हो गया है, मुख्य स्थान अब कूटनीतिक कार्रवाइयों ने ले लिया
है। जापानी लोग अब भी [illegible] पर अपने ध्यान को केन्द्रित
किये हुए हैं। एक तो वे यह चाहते हैं कि रूस के साथ अनाक्रमण
सन्धि हो जाय, जिससे वे
भी किसी तरह की [illegible] और लड़ाई सेना को हटाकर
मञ्चूरिया में [illegible]
दूसरी जगह ले जा सकें। दूसरे वे यह चाहते हैं कि चीन की [illegible]
बाहर भी [illegible] 'मुक्ति' की शर्तें [illegible] और [illegible]

पता चलता है कि चीनी सरकार ने अपने भूतपूर्व टोकियो स्थित राजदूत श्री शूशिह् चिंग को आज्ञा दी थी कि वे जापान की शर्तें चुंगकिंग की सरकार के विचारार्थ ले आवें। साथ ही चीन की सरकार अपनी वैदेशिक नीति का फैसला करने के लिए दूसरे राष्ट्रों के साथ अपने सम्बन्ध पर भी विचार कर रही है।

ब्रिटेन, अमेरिका और सोवियत-रूस युद्ध-सामग्री भेजकर चीन की सहायता किस हद तक कर सकेंगे इसी पर चीन की सरकार का फैसला निर्भर करता है। जर्मन लोग जापान सरकार पर इस बात के लिए बहुत दबाव डाल रहे हैं कि वह चीन के साथ अपना झगड़ा निपटा ले और पीली नदी के दक्षिण और कुछ तटवर्ती नगरों से अपनी सारी सेना हटा ले, ताकि वह एशिया में ब्रिटेन के अधिकृत देशों पर आसानी से हमला कर सके। जर्मन लोग चीन से भी इस प्रकार की सन्धि को स्वीकार कर लेने का आग्रह कर रहे हैं। किन्तु जर्मन लोग चीन में जनप्रिय नहीं हैं, त्रिराष्ट्र सन्धि के बाद तो चीन के अधिकांश नेता उनके विरोधी हो गये हैं। किन्तु कुछ फासिस्ट विचार धारावाले अब भी उनके प्रशंसक हैं और इनमें कुमिटांग के मन्त्री डा० चूचला [illegible] भी हैं।

चीन की स्थिति, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय कारणों से, जितनी जटिल हो रही है, उतनी जटिल इससे पहले कभी भी नहीं थी। चीन पर जापान का आक्रमण लगभग चार साल से जारी है और चीन भी काफी वीरतापूर्वक जापान का सामना कर रहा है। अन्य देशों में चीन का गुणगान [illegible] करने में भी [illegible] हो गया है। राष्ट्रीय सेना चीनवासियों में इस हद तक [illegible] [illegible] भी अब जापान के साथ सन्धि करने को नहीं तैयार

प्रभावशाली व्यक्ति भी हैं जिनको यह विश्वास नही होता कि
सोवियट-रूस समझौता कर लेगा या चीन को अपनी महत्त्वपूर्ण
सहायता देना बन्द कर देगा। यदि चीन सरकार यह जान लेना
या तै कर लेना चाहती है कि सोवियट-रूस, ब्रिटेन और अमेरिका
से वह क्या सहायता पाने की आशा करे, तो इसमें कोई भी
अनौचित्य नही कहा जा सकता। चीन को तोपो और हवाई
जहाजो की जरूरत है। ब्रिटेन ये चीजें अभी नहीं दे सकता
लेकिन वह भविष्य मे इन्हे भेजने की गारन्टी या आश्वासन दे
सकता है। अमेरिका इस प्रकार का काफी सामान दे सकता है।
भविष्य की स्वतंत्र चीन सरकार की गारन्टी पर बहुत काफी कर्ज
भी दे सकता है।

जापान को इस बात का भरोसा है कि अमेरिका की स्थल सेना
अभी लड़ाई के लिए तैयार नहीं है और अमेरिका बहुत अधिक
दूरी पर भी है, जब कि जापान बिलकुल मौके पर ही डटा हुआ
है। अमेरिका के पूँजीपति भी मुनाफे को ही ध्यान मे रखकर कार्य
करते हैं, जिसके चलते बहुत से अमेरिकन और अँग्रेज यह नहीं
चाहते कि भविष्य मे चीन या जापान मे से कोई भी [illegible] और
शक्तिशाली हो। वास्तव में जो चीज उन्हें पसन्द है वह यह है कि
चीन पहले की तरह ही अर्ध-औपनिवेशिक देश बना रहे और
[illegible] के लिए प्रेरक शक्ति न बन सके। [illegible]
[illegible] स्थानों में [illegible] है,
[illegible] तथा अन्य स्थानों में [illegible]
[illegible] के कारण [illegible]
[illegible] यद्यपि ऐसी योजना के [illegible]
? [illegible] और दूसरे [illegible]
जा सकता है।

[illegible] कि चीन की [illegible] है.

पारिभाषिक शब्द

येन—जापानी सिक्का जिसका मूल्य लगभग ॥=) के बराबर होता है।

सेन—जापानी सिक्का, जो 'येन' का शतांश होता है।

कुमिन्टाङ्ग—चीन की सबसे बड़ी राष्ट्रीय संस्था, जैसी हमारी कांग्रेस है।

कोमिन्टर्न—'कम्युनिस्ट-इन्टरनेशनल' नामक विश्व-व्यापी कम्युनिस्ट-संगठन का संक्षिप्त अंगरेजी नाम।

मनरो डॉक्ट्रिन—वह सिद्धान्त जिसे पहले-पहल संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपति मनरो ने प्रतिपादित किया था, जिसका क्रियात्मक अर्थ यह है कि कोई भी शक्तिशाली राष्ट्र यह दावा कर सकता है कि अन्य राष्ट्र उन क्षेत्रों में हस्तक्षेप न करें जिनमें उसका हित निहित हो।

सहायक पुस्तकें

जापान दि हंगरी गेस्ट	(अंगरेजी)	जी० सी० एलेन
दि पेंगुइन पोलिटिकल डिक्शनरी	(,,)	वाल्टर थीमर
दि प्राब्लम ऑफ फार ईस्ट	(,,)	सोबी मोगी और वीर रेडमैन
जापानीज इम्पीरियलिज़्म	(,,)	[illegible]
प्राब्लम ऑफ पैसिफिक	(,, दो भाग)	[illegible]
[illegible]		
[illegible]		
[illegible]		
[illegible]	(,,)	